देत् प्रब्रूयादुपदिशेत् । सच्छिष्यप्राप्तौ विद्योपदेशो नियमतः करणीय एवाचार्येणेतिभावः ॥१३॥

ॐ इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्योपेते प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥२॥ ॐ

वह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् अर्थात् परमात्म साक्षात्कारवान् गुरु शास्त्रविहित विधि से समित्पाणि हो करके स्वसमीप में शिष्यभाव से प्राप्त व्यक्ति को जो शिष्य प्रशान्तचित्त है दर्पदंभादिकों से रहित को तथा-'**समः**' बाह्येन्द्रिय चक्षुरादिक नियमन स्वरूप शम से युक्त को । बाह्यादि विषयों से उपरत (निवृत्त) है बाह्यकरण समुदाय जिस का एतादृश शिष्य को । जिस विज्ञान से अक्षर अर्थात् स्वरूपतः विकार रहित तथा सत्य अर्थात् गुण से भी सर्व विकार रहित पुरुष को अर्थात् निरूपाधिक पुरुष पदवाच्य परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को जान सके एतादृश ब्रह्मविद्या परा अर्थात् परमपुरुष की प्राप्ति में साधनभूत विद्या को कहे अर्थात् तादृश ब्रह्मविद्या का उपदेश देवें । योग्य शिष्य प्राप्त हो तब उसे नियमतः ब्रह्मविद्या का उपदेश आचार्य अवश्य करें, ऐसा अभिप्राय है ॥१३॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यप्रकाशे प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः 卐

卐 ॐ 卐

卐 अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः 卐

तदेतत् सत्यम् । यथा प्रदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाऽक्षराद् विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥१॥

सब जग प्रसिद्ध यह परब्रह्म सत्य-उत्पत्ति तथा विनाश प्रभृति छ विकारों से रहित एवं नित्य है जैसे प्रज्वलित अग्नि से समान रूपा हजारों चिनगारियां समुत्पन्न होती हैं उसीप्रकार हे सोम्य ? अक्षर अर्थात् सूक्ष्म चित् एवं अचित् शरीर वाले नाशरहित ब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी से स्थूल चित् तथा अचित् स्वरूप भाव-कार्य उत्पन्न होते हैं एवं उसी सूक्ष्मचित् तथा अचित् रूप ब्रह्म श्रीराम में ही विलीन होते हैं ॥१॥

कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवतीति पूर्वं पृष्टं शौनकेन, तदुपदिक्षुरङ्गिरा गुरुर्विद्याद्वयस्योपक्रमं कृत्वा अक्षरप्राप्तिहेतुः पराविद्येति प्रोक्तवान् । संप्रति परविद्या विषयोऽक्षरः पुरुष उपदिश्यते यद्विज्ञानेन सर्वविज्ञानं भवति यतः प्रश्नस्य उत्तरमुक्तं भवेत् । तदेतत् सत्यम्। तत् पूर्वं प्रस्तुतं यत् तदित्यर्थः । एतद् वक्ष्यमाण स्वरूपं सत्यं सत्यशब्दवाच्यमुत्पत्त्यादिसर्वविकार शून्यमक्षरं ब्रह्म संप्रति वर्त्तत इति शेषः । यथा येन प्रकारेण सुदीप्तादिन्धनोपधानेन प्रज्वलितात् पावकाद्

वह्नेः सरूपाः पावकसमानाकाराः सहस्रशोऽगणितसंख्याकाः। अनेकश इति यावत्। विस्फुलिङ्गा अग्निकणाः प्रभवन्ते निस्सरन्ति तथा तेनैव प्रकारेण हे सोम्य प्रियदर्शन ? शौनक ? अक्षरात् सूक्ष्मचिदचिच्छरीरकात् परब्रह्मणः श्रीरामाद् विविधा नानाकारा भावाः पदार्था वियद्वायुप्रभृतयो देवादिरूपाश्च। स्थूलचिदचित्स्वरूपा इत्येतत्। प्रजायन्त उत्पद्यन्ते। तत्रैवाक्षरे परे ब्रह्मणि अपियन्ति विलयं प्राप्नुवन्ति च।१।

किसे जान लेने से सकल चिदचित् स्थूल सूक्ष्म साधारण पदार्थ समुदाय ज्ञात हो जाता है। इसप्रकार का प्रश्न पहले शौनक मुनि ने अंगिरा आचार्यजी से किया था। उसका उपदेश देने की इच्छा से अंगिरा गुरुजी ने विद्याद्वय का उपक्रम करके अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति में कारण परा तथा अपरा विद्या है ऐसा कहा था। इसके वाद परविद्या का विषय जो अक्षर पुरुष है उस अक्षर ब्रह्म का उपदेश देते हैं। जिस अक्षर ब्रह्म के विज्ञान से सब पदार्थ समुदाय ज्ञात हो जाता है। जिससे कि शिष्य के प्रश्न का उत्तर हो जाय '**तदेतत्सत्यम्**' इत्यादि। तत् अर्थात् पूर्व प्रस्तुत जो अक्षर ब्रह्म वह एतत् अर्थात् वक्ष्यमाण स्वरूपक सत्य शब्द वाच्य जो कि उत्पत्यादि सर्वप्रकारक विकार से रहित हैं एतादृश अक्षर ब्रह्म

संप्रति विद्यमान हैं । **'यथेत्यादि'** यथा-जिस तरह सुदीप्त अर्थात् इन्धनादि के द्वारा अत्यन्त पावक वह्नि से सरूप अर्थात् पावक का समानाकारक अगणित संख्या वाला विस्फुलिङ्ग वह्नि का कण अनेक निकलता है । उसीप्रकार हे सोम्य प्रिय दर्शन शौनक ? सूक्ष्म चिदचित् शरीरक अक्षर परब्रह्म श्रीरामजी से नाना प्रकारकभाव पदार्थ अर्थात् आकाश वायु प्रभृतिक तथा देवमनुष्यादि रूप स्थूल चिदचित्स्वरूप पदार्थ उत्पन्न होते हैं और प्रलयकाल में उसी अक्षर परब्रह्म श्रीरामजी में विलीय मान हो जाते हैं । इससे यह बतलाया गया कि पदार्थों का उत्पत्ति स्थिति प्रलय श्रीरामाधीन है ॥१॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

वह दिव्यलोक साकेत में स्थित परपुरुष श्रीरामजी प्राकृत मूर्तिरहित एवं सभी चराचर जगत् के बाहर एवं अन्दर में स्थित हैं और अज तथा प्राकृतिक प्राण से रहित हैं तथा मन-हेय मन से भी शून्य हैं एवं वह शुभ्र-शुद्ध स्वरूप हैं । तथा वह ब्रह्मतत्त्व अव्याकृत अक्षर तत्त्व प्रधान से एवं समष्टिरूप पुरुष जीव तत्त्व से भी पर-अति श्रेष्ठ हैं ॥२॥

दिव्यो द्योतनगुणवान् स्वयंप्रकाशज्ञानस्वरूपत्वात् परमात्मनो यद्वा द्युसम्बन्धित्वाद् दिव्योऽमूर्तः पाणिपा दादिराहित्यश्रुतेः प्राकृतमूर्तिरहितः स पूर्वोक्तो भूत

योनिः परमपुरुषोऽक्षरशब्दोदितः । बाह्याऽभ्यन्तरो बहिर्भवो बाह्योऽभ्यन्तरे भव आभ्यन्तरः सर्ववस्तुषु वहिरन्तश्च वर्तमानो 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीमन्तरो यमयति' 'यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमन्तरो यम यती'त्यादिश्रुतिभ्यः 'बहिरन्तश्च भूतानां व्याप्य नारा यणः स्थितः' इति स्मृतेश्च । सकलचिदचिद्वस्तुव्यापक इत्यर्थः । पुरुषः पुरि शेत इति पुरुषः सर्ववस्तुशरीरक इत्यर्थः । 'तेनेह पुरुषेण पूर्णमि'ति श्रुत्या सर्ववस्तूनां परमात्मना पूरितत्वावगतेः । अजो न जायत इत्यजो जन्मरणादिसकलविकाररहितः । अप्राणः प्राणापानादिसम्बन्धशून्यः । अमना मनःसम्पर्करहितः । शुभ्रः कर्माऽवश्यत्वाद् रजस्तमोप्रयुक्तमालिन्यरहितः । पुण्यपापविहीन इति यावत् । अक्षरात् परतः परोऽक्षरमिह प्रधानम् अश्नुते स्वविकारमहदादिकं व्याप्नोतीति व्युत्पत्तेः स्वविकारव्यापकमित्यर्थः । यद्वा न क्षरतीत्यक्षरं क्षरणाभावविशिष्टमव्याकृतनामरूपं तस्मादक्षरात् प्रधानात्परो यः पुरुषो जीवाख्यः तस्मादपि परः परमपुरुषः । अत्र दिव्यो ह्यमूर्त इत्यादिविशेषणैः प्रधानव्यावृत्तिः । अप्राणो ह्यमना इत्यादिना जीवव्यावृत्तिः कृता भवति । सर्वचिदचिच्छरीरकः ततो भिन्नश्च भूतयोनिरक्षरो यतः सर्वे

भावाः प्रभवन्तीत्याशयः ।।२।।

'दिव्य' इत्यादि । वह परमात्मा दिव्य है द्योतन स्वभावक है स्वप्रकाशरूप होने से । अथवा द्यु सम्बन्धी होने से दिव्य है । तथा वह अक्षर ब्रह्म अमूर्त है क्योंकि **'अपाणिपादो जवनोगृहीता'** इत्यादि श्रुत्यन्तरानुसार पाणि पादादि रहित हैं । अर्थात् प्राकृत मूर्ति रहित हैं । वह पूर्व प्रकृत भूतों के कारण अक्षर शब्द वाच्य हैं । **'बाह्याभ्यन्तरः'** बाहर जो हो उसे वाच्य कहते हैं और अभ्यन्तर में जो हो उसे आभ्यन्तर कहते हैं वह परमात्मा सब पदार्थों के बाहर तथा अन्तर में वर्तमान हैं क्योंकि 'जो पृथिवी में रहता हुआ पृथिवी के अन्तर में हैं' और जो विज्ञान में रहता हुआ इत्यादि श्रुति से । तथा 'सब भूतों को बाहर भीतर व्याप्त करके नारायण शब्द से बोधित भगवान् श्रीरामजी स्थित हैं' इसप्रकार स्मृति भी कहती है अर्थात् सकल चिदचित् वस्तु में व्यापक हैं । वह पुरुष है, पुर में जो रहे उसे पुरुष कहते हैं अर्थात् सर्व पदार्थ भगवान् का शरीर है 'यह सब्र वस्तु इस पुरुष से पूर्ण है' इत्यादि श्रुतियों से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा से पदार्थमात्र परिपूरित है । तथा वह परमात्मा अज हैं जो उत्पन्न न हो उसे अज कहते हैं अर्थात् जन्ममरणादि सकलविकार रहित हैं ।

तथा वह परमात्मा प्राणापानादि सम्बन्ध रहित हैं। तथा मन के सम्बन्ध से भी रहित हैं। तथा शुभ्र स्वच्छ है कर्मपदाधीन नहीं होने से रजोगुण तथा तमोगुण प्रयुक्त जो मलिनता उससे रहित हैं अर्थात् पाप पुण्य से रहित हैं। तथा अक्षर से भी परतः पर हैं अक्षर शब्द से यहां प्रधान का ग्रहण होता है स्वकीय विकार जो महत्तत्व अहंकार प्रभृतिक को जो व्याप्त करे यह इसकी व्युत्पत्ति है। अर्थात् स्वकीय विकार का व्यापक। अथवा जो क्षरित विनष्ट न हो क्षरणाभाव विशिष्ट अव्याकृत नामरूप वाला प्रधान से पर जो पुरुष जीव है तादृश जीव से भी पर उत्कृष्ट परमपुरुष भगवान् हैं। यहां **'दिव्योऽमूर्तः'** इत्यादि विशेषण से प्रधान की व्यावृत्ति हो जाती है तथा **'अप्राणोऽमनाः'** इत्यादि विशेषणों से जीव की व्यावृत्ति होती है। सर्व चिदचित् शरीरक है तथा चिदचित् से भिन्न है तथा सर्वभूतों का निदानकारण परमात्मा हैं जो अक्षर पदवाच्य हैं। एतादृश परमात्मा श्रीरामजी से सब भाव उत्पन्न होता है ऐसा मन्त्र का अभिप्रेत अर्थ होता है ॥२॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ३

इसी परब्रह्म श्रीरामजी से प्राण उत्पन्न होता है एवं मन भी इसी से

उत्पन्न होता है और सभी इन्द्रियां आकाश वायु तेज तथा जल एवं सारे विश्व को धारण करनेवाली पृथिवी भी इसी से उत्पन्न होती है ॥३॥

एवं विशेषणद्वारा भूतयोन्यक्षरस्य स्वरूपं चिदचिद्भ्यो विविच्य तस्मात् प्रादुर्भूतान् भावानपि विशेषतो नामग्राहं दर्शयति-एतस्मात् सर्वभूतयोनेः परमपुरुषरूपादक्षरात् प्राणः प्राणनादिपञ्चवृत्तिः । मनोऽन्तःकरणम् । सर्वेन्द्रियाणि वागादीनि कर्मेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि बाह्यज्ञानेन्द्रयाणि च जायन्ते । एतावता भोक्तुर्जीवस्य भोगोपकरणं प्रदर्शितम् । खमाकाशं प्रथमजं भूतम् । वायुर्द्वितीयं भूतम् । ज्योतिस्तेजोधातुः । आपो जल धातुः । विश्वस्य सर्वस्य धारिणी आधारभूता पृथिवी च जायते । एतेन भोक्तुर्भोग्यवर्गसृष्टिः प्रदर्शिता ॥३॥

पूर्वोक्त प्रकार से कथित विशेषण द्वारा भूतों की योनि निदान का अक्षर परमपुरुष के स्वरूप को चिद चित् से विविक्त विभिन्न बतलाकरके उस अक्षर से प्रादुर्भूत अर्थात् समुत्पन्नभाव को भी विशेष रूपसे नामग्रहण पूर्वक बतलाते हैं-**'एतस्मादित्यादि'** इन सर्व भूतों का निदानकारण परमपुरुष अक्षर से प्राणापानादि पञ्चवृत्ति वाला मुख्यप्राण उत्पन्न होता है एवं मनरूप अन्तःकरण उस भूतयोनि से उत्पन्न होता है । तथा

वागादिक सर्व कर्मेन्द्रियां भी उसी अक्षर से उत्पन्न होते हैं तथा बाह्य जो चक्षुरादिक पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं उनकी भी उत्पत्ति अक्षर से होती है । इससे भोक्ता जो जीवात्मा उसके उपयोग करने में उपयोगींकरण का कथन किया गया । तथा सर्वभूतों में प्रथम उत्पन्न होनेवाला आकाश उत्पन्न हुआ । तथा द्वितीय भूत वायु भी उसी अक्षर योनि से उत्पन्न हुआ । तृतीय तेजो धातु अग्नि तथा जल धातु आप उत्पन्न हुआ । और समस्त पदार्थ को धारण करनेवाली अर्थात् समस्त पदार्थ का आधारभूत पृथिवी उसी अक्षर परपुरुष से उत्पन्न होती है । इससे भोक्ता जीव का जो भोग्यवर्ग है उसकी उत्पत्ति का निर्देश किया गया है ॥३॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्व मस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ।४।

इस परब्रह्म श्रीरामजी का अग्नि-द्युलोक मस्तक है चन्द्रमा तथा सूर्य दो आँखे हैं दिशाएं दो कान हैं लोक प्रसिद्ध सव वेद वाणी है एवं वायु प्राण है विश्व हृदय है तथा पृथिवी दोनों पैर हैं अतः ये सर्वेश्वर श्रीरामजी सभी भूतवर्ग के अन्तरात्मा हैं ॥४॥

सर्वेषां भावानामुपादानभूतो भूतयोनिशब्दितपरम पुरुषः कीदृश इति विशेषणैः पुनर्निरूपयति-अग्नि

द्युलोकः 'असौ वाव लोको गौतमाग्नि'रितिश्रुतेः । स एवास्याक्षरब्रह्मणो मूर्धामस्तकस्थानीयः । चन्द्रसूर्यौ चन्द्रश्च सूर्यश्च चन्द्रसूर्यौ तौ एव अस्य चक्षुषी चक्षु स्थानीयौ । दिशः पूर्वादयः ता एवास्य श्रोत्रेन्द्रियस्था नीयादिश इत्यर्थः । अस्य वाग् विवृता वाचा विवृता उच्चारिता वागिन्द्रियव्यापाररूपा वेदा ऋग्यजुरादयः सन्ति । वायुः प्रसिद्धो महावायुरेवास्य प्राण देहधार णहेतुः । अस्य हृदयं मनो विश्वम् समस्तमेव विश्वमस्य मनःसंकल्पाज्जातमिति विश्वस्य हृदयत्वेन निरूपण मितिभावः । पद्भ्यां पृथिवी । पद्भ्यामित्यत्राभेदे तृतीया प्रकृत्यादिभ्योऽभेदे तृतीयानुशासनात् । अस्य पादावेव पृथिवीत्यर्थः । यद्वा पद्भ्यां जाता पृथि वीत्यर्थः । एवंभूत एव भूतयोनिरक्षरः परमपुरुषो हि यतः कारणात् सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषां भूतानामे तच्छरीरत्वादयं सर्वान्तरात्मभूत इत्यर्थः ।।४।।

सर्वभावों का उपादानभूत-भूतयोनि पद प्रतिपादित परमपुरुष किस तरह के हैं ? इस जिज्ञासा के विवृत्यर्थ पुनः उस परमपुरुष का निरूपण विशेषण द्वारा करते हैं- **'अग्निर्मूर्धा'** इत्यादि । अग्नि अर्थात् द्युलोक 'यह लोक हे गौतम अग्नि है' इस श्रुत्यन्तर के अनुसार अग्नि उस परमपुरुष का मूर्धा अर्थात् मस्तक है । और चन्द्रमा

तथा सर्वतः प्रकाशमान सूर्य सविता देव इस परमपुरुष के चक्षु स्थानापन्न हैं। तथा पूर्व पश्चिमादिक दिशायें इस परमात्मा के श्रोत्र हैं। तथा इस परमपुरुष का विवृत वाणी द्वारा उच्चारित वागिन्द्रिय का व्यापाररूप ऋगादि वेद ही वाणी स्थानापन्न है। तथा वायु यह प्रसिद्ध जो महावायु जो कि प्राण का कारण है वह इस अक्षर पुरुष का प्राण है। संपूर्ण विश्व जो कि परमपुरुष के मनः संकल्प से जायमान है वह इस परमपुरुष का हृदय है। अर्थात् विश्व ही इस परमपुरुष का हृदय है। तथा पाद स्थानापन्न पृथिवी है। पद्भ्याम् इसमें जो तृतीया विभक्ति है वह अभेद में है-**'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** इस अनुशासन के अनुसार अर्थात् पादाभिन्न पृथिवी है। अथवा परमपुरुष से पृथिवी पैदा हुई है। एतादृश अक्षर भूतयोनि परमपुरुष जिसलिये सर्वभूतों को अन्तरात्मा है क्योंकि सर्वभूत परमपुरुष का शरीर है अतः परमपुरुष सर्वभूतान्तरात्मरूप है यह अर्थ मन्त्र का पर्यवसित होता है ॥४॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां वह्वीः प्रजाः पुरुषात्सं

प्रसूताः ॥५॥

उस परपुरुष श्रीरामजी से जिसकी समिधा सूर्य है ऐसी द्युलोक स्वरूप अग्नि उत्पन्न होती है द्युलोक अग्नि से उत्पन्न सोम से मेघस्वरूप अग्नि निष्पन्न होता है तब मेघ से वर्षा एवं उससे पृथिवी स्वरूप अग्नि में अनेक प्रकार के ओषधियां होती हैं स्त्री स्वरूप अग्नि में पुरुष स्वरूप अग्नि वीर्य सिंचन करता है इस पंचाग्नि विद्या क्रम द्वारा परपुरुष श्रीरामजी से बहुत प्रजावर्ग उत्पन्न हुये हैं ॥५॥

तस्मादक्षरात् परमपुरुषादग्निर्द्युलोकः पञ्चाग्नि विद्याप्रकरणे प्रथमाग्नित्वेन वर्णितोग्निर्द्युलोक एवेत्यर्थः । तस्य प्रथमाग्नेर्द्युलोकात्मकस्य समिध इन्धनानि सूर्य एव । सूर्येण द्युलोकस्य प्रदीप्तत्वादित्यर्थः । 'तस्यादित्य एव समित्' इतिश्रुतेः । सोमात् पर्जन्यः प्रथमाग्नौ द्युलोके सोमभावं गतं भूतसूक्ष्ममेव सोम शब्दवाच्यम् । तस्मात् पर्जन्यो द्वितीयोग्निर्भवति । वृष्टिरूपोऽग्निर्भवतीत्यर्थः । तस्मात् पर्जन्यात् पृथिव्यां तृतीये पृथिवीरूपाग्नौ ओषधय उत्पद्यते । ओषधिभ्यो पुरुषाग्नौ हुताभ्यः पुमान् चतुर्थः पुरुषरूपोऽग्निः । योषितायाम् पंचमे योषिद्रूपेऽग्नौ रेतो वीर्यं सिञ्चति आदधाति । ततो रेतोधानात् योषिद्रूपात् पञ्चमाग्नेः सकाशात् प्रजा मनुष्यादयः संभवन्ति । एवं क्रमेण पुरुषाद् भूतयोनिशब्दितादक्षराख्यात् परमपुरुषाद् बह्वीर्बह्व्यो नानायोनिगताः प्रजाः सम्प्रसूताः समुत्पन्ना

भवन्ति ॥५॥

'तस्मादित्यादि' उस अक्षर परमपुरुष से अग्नि अर्थात् द्युलोक उत्पन्न हुआ । पञ्चाग्नि विद्या के प्रकरण में प्रथम अग्नि के रूपमें वर्णित जो अग्नि है वह द्युलोकरूप ही है । उस द्युलोकात्मक प्रथम अग्नि का समिध अर्थात् इन्धन सूर्य हैं क्योंकि सूर्य से ही द्युलोक प्रदीप्त होता है । दूसरी श्रुति में भी कहा है-**'तस्यादित्य एव समित्'** (उस द्युलोकरूप प्रथम अग्नि का आदित्य सूर्य ही समिधा इन्धन है । इसप्रकार से श्रुत्यन्तर में भी कहा गया है) सोम से पर्जन्य हुआ । उस प्रथम अग्नि द्युलोक में सोमभाव को प्राप्त किया हुआ सूक्ष्मभूत ही सोम शब्द का वाच्य है । उस पर्जन्य से तृतीय पृथिवीरूप अग्नि में ओषधि व्रीहि यवादिक की उत्पत्ति होती है । पुरुषरूप अग्नि में हुत व्रीहि यवादिक ओषधियों से पुरुष चतुर्थ अग्नि का प्रादुर्भाव होता है । और वह पुरुष योषित् स्त्रीरूप पंचम अग्नि में रेतस वीर्य का आधान करता है । उस रेतस युक्त स्त्रीरूप पंचम अग्नि से प्रजा मनुष्य गवादिक जन्तुओं की उत्पत्ति होती है । इस क्रम से भूतयोनि अक्षररूप परमपुरुष से अनेक प्रकारक मनुष्यादिक प्रजाओं की उत्पत्ति होती है ॥५॥

तस्मादृचः सामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च । संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥

उस परपुरुष से ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद पांच संस्कार प्रभृति दीक्षा एवं सभी प्रकार के यज्ञ ज्योतिष्टोम प्रभृति क्रतु तथा दक्षिणाएं एवं संवत्सर यजमान तथा लोक-स्वर्गादि निष्पन्न हुये उन लोकों को चन्द्रमा स्वकिरणों द्वारा पवित्र करता है एवं उन लोकों को सूर्य स्वकिरणों द्वारा प्रकाशित करता है ॥६॥

कर्मसाधनभूता वेदादयः कर्मफलानि स्वर्गादीनि च तस्मादेवाक्षरात् समुत्पन्नानीति दर्शयति । तस्मादक्षराख्यात्परमात्मनः ऋचः ऋडमन्त्रा गायत्र्यादिछन्दोरूपाः सामगीतिप्रधानः सामवेदः । यजूंषि अनियताक्षरपादानि वाक्यरूपाणि यजुर्वेद इत्यर्थः । दीक्षा यजमानगतयज्ञकर्तृनियमविशेषा मौञ्जीबन्धनादिरूपाः । यज्ञा अग्निहोत्रादिरूपाः । सर्वे क्रतवः समग्रा यूपसहिता यागाः । दक्षिणाश्च एकां गामारभ्य क्रत्वनुसारेण सर्वस्वपर्यन्तां ऋत्विग्भ्यो दीयमानाः । संवत्सरो यज्ञाङ्गभूताः संवत्सरादयः कालाः । यजमानो यागकर्ता पुरुषः । लोकास्तस्य यजमानस्य कर्मफलभूताः स्वर्गादयो लोकाश्च तस्मादेवाक्षरात् समुत्पन्नाः । लोकान् विशिनष्टि द्वाभ्यां विशेषणाभ्याम् । यत्र स्वर्गादिलो

केषु कर्मफलभूतेषु सोमश्चन्द्रः पवते स्वकिरणैस्तत्रत्यान् लोकान् पुनाति । पवित्रयतीत्येतत् । यत्र च स्वर्गादिषु लोकेषु सूर्य आदित्यस्तपतीति शेषः । स्वकिरणैः तत्रत्यान् प्रकाशयतीत्यर्थः । येषु लोकेषु दक्षिणेन पथा कर्मिण उत्तरेण पथा ज्ञानिनः प्रयान्ति । ते लोका अपि परमपुरुषादेवाक्षरात् सृष्टाः इतिभावः ।६।

अग्निहोत्रादि कर्मों का साधनरूप वेदादिक और कर्म का फल जो स्वर्गादिक साध्य है ये सब पदार्थ उसी अक्षर परमपुरुष से उत्पन्न होते हैं इन वस्तुओं को बतलाते हैं-'**तस्मादृचः**' इत्यादि । उस अक्षररूप परमात्मा से गायत्री प्रभृतिक छन्दोरूप ऋक् मन्त्रों की उत्पत्ति हुई । और गीति प्रधान सामवेद प्रादुर्भूत हुआ और अनियत अक्षर तथा अनियत पदवाला यजुर्वेद समुत्पन्न हुआ । एवं उसी अक्षररूप परमपुरुष से दीक्षा का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् यजमानगत यज्ञ कर्तृत्व लक्षण नियम विशेष जो कि मौंजी बन्धनरूप है तादृश दीक्षा का प्रादुर्भाव हुआ । एवं अग्निहोत्रादि लक्षण यागों का प्रादुर्भाव उस अक्षररूप परमपुरुष से हुआ । तथा सब प्रकार के क्रतुओं का अर्थात् समग्र यूप सहित यागों की उत्पत्ति हुई । एवं एक गोदान से लेकर सर्वस्व दान पर्यन्त ऋत्विकों के लिये दीयमान दक्षिणा की उत्पत्ति

हुई उस परमपुरुष से । एवं संवत्सर अर्थात् यागादिक क्रिया साधन लक्षण मास ऋतु अयन संवत्सर मनु मन्वन्तरादिक काल की उत्पत्ति अक्षर पुरुष से होती है। तथा यजमान अर्थात् यागात्मक कर्म का कर्तापुरुष उत्पन्न हुआ । एवं लोक की उत्पत्ति हुई । अर्थात् यजमान के कर्म के फलस्वरूप स्वर्गादिक जो लोक है उसका प्रादुर्भाव हुआ । इसी लोक के विशेषणद्वय को बतलाते हैं–**'सोमोयत्रेत्यादि'** जिस कर्मफल लक्षण स्वर्गादिक लोक में सोम अर्थात् चन्द्रमा स्वकीय किरण द्वारा तत्तत् लोक में रहनेवाले जीवराशि को पवित्र करते हैं । तथा उस स्वर्गादिक लोक में आदित्य प्रकाशित होते हैं । अर्थात् स्वकीय किरण द्वारा सबको प्रकाशित करते हैं । उसी लोक में दक्षिण मार्ग से इष्टापूर्त कर्म करनेवाले तथा उत्तर मार्ग से ज्ञानी लोग जाते हैं । एतादृश लोक का भी प्रादुर्भाव अक्षर परमपुरुष श्रीरामजी से ही होता है ऐसा अभिप्राय मन्त्र का है ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

उसी परपुरुष श्रीरामजी से ही अजानज प्रभृति बहुत प्रकार के देव समुत्पन्न हुये तथा साध्यगण मनुष्य पशुवर्ग और पक्षीवर्ग और

प्राण तथा अपान आदि वायु धान जौ आदि अनाज एवं तप श्रद्धा सत्य वाणी और ब्रह्मचर्य तथा विधि नियम प्रभृति निष्पन्न हुए ।।७।।

कर्माङ्गभूतानामुत्पत्तिमिदानीं दर्शयति-तस्मादक्षराख्यपरमपुरुषादेव देवा इन्द्रादयः कर्माङ्गभूता यदुद्देश्येन कर्माणि विधीयन्ते ते बहुधा बहुप्रकारा मरुद्वस्वादयो गणभेदेन नानाप्रकारा इत्यर्थः । संप्रसूताः सम्यक् प्रसूता समुत्पन्नाः । साध्या देवयोनिविशेषाश्च तस्मादेव संप्रसूताः । मनुष्याः कर्माधिकारिणः । पशवश्चतुष्पदा गवाश्वादयः । वयांसि पक्षिजातय एतेषामपि परम्परया कर्मसु विनियोगो यथायथमूह्यः । प्राणाऽपानौ जीवनसाधनभूतौ जीवनं विना कर्माऽनुपपत्तेः । व्रीहियवौ हविर्द्वारा कर्माङ्गभूतौ व्रीहियवौ धान्यानामितरेषामपि समुपलक्षकौ । तपः कृच्छ्राति कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपं शरीरशोषणात्मकम् । श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिर्यया विना कर्मसु प्रवृत्तेः सिद्धेश्च न संभवो लोकस्य । सत्यमनृतवदनवर्जनरूपम् । अनृतवदनेन कर्मफलेषु विसंवादश्रुतेः । ब्रह्मचर्यमष्टविधमैथुनपरित्यागः । विधिः प्रयोजकं वैदिकं वाक्यम् । स्वर्गकामो यजेतेत्यादिरूपं नित्यकाम्यनैमित्तिकभेदभिन्नमित्यर्थः । एतत्सर्वं कर्माङ्गभूतं परमपुरुषाक्षरात् संभवतीतिभावः ।।७।।

अग्निहोत्रादिक कर्मों का अंगभूत जो पदार्थ समुदाय की उत्पत्ति होती है उसके प्रकार को बतलाते हैं- **'तस्माच्चदेवा'** इत्यादि । उस अक्षररूप परमपुरुष से देवता कर्म के अंगभूत इन्द्रादिक देव की उत्पत्ति हुई । जिन देवताओं को उद्देश्य करके कर्म का विधान किया जाता है वे देव बहुधा मरुत् वसु प्रभृतिक गणभेद से अनेक प्रकारक समुत्पन्न हुए । और देवयोनि विशेष साध्य समुत्पन्न हुए । एवं कर्माधिकारी मनुष्यों का प्रादुर्भाव उसी अक्षर परमपुरुष से हुआ । और पशु चतुष्पद गवादिक का प्रादुर्भाव हुआ । तथा पक्षियों का प्रादुर्भाव हुआ । ये पक्षी समुदाय भी परम्परया याग के साधन होते हैं । तथा प्राणापान जीवन का साधन लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं क्योंकि प्राणापान के बिना कर्म अनुपपन्न हो जाता है । हविर्द्वारा कर्म के अंगभूत ब्रीहि यवादिक की उत्पत्ति हुई । ब्रीहि यव अन्य धान्य का भी उपलक्षक है । तप कृच्छ्रचान्द्रायणादिक जो कि शरीर शोषकरूप है । श्रद्धा आस्तिकता बुद्धि जिसके बिना कर्म में प्रवृत्ति तथा सिद्धि असंभवित है लोगों की । **सत्य** अनृत वदन वर्जनरूप । क्योंकि अनृतवदन से कर्मफल संपन्न नहीं होता है तथा अष्टविध मैथुन वर्जन रूप ब्रह्मचर्य, विधि प्रयोजक वैदिक वाक्य **'स्वर्गकामो**

यजेत' इत्यादि रूप जो कि नित्य काम्यादि रूपसे अनेक प्रकारक है। ये सब पूर्वकथित कर्म के अंगभूत परमपुरुष से समुत्पन्न हुए अर्थात् इन सब पदार्थों का प्रादुर्भाव परमपुरुष श्रीरामजी से होता है ॥७॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः। सप्त इमे लोकाः येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥८॥

उसी परब्रह्म श्रीरामजी से सात प्राण उत्पन्न होते हैं और सात काली कराली प्रभृति ज्वालाएं तथा सात समिधाएं और सात हवन एवं ये सात लोक उत्पन्न होते हैं। जिन लोकों के गुफा में शयन करनेवाले धाता द्वारा प्राणिवर्ग में निहित सात सात प्राण संचरित होते हैं ॥८॥

तस्मादक्षराख्यपरमात्मनः सप्त सप्तसंख्याकाः प्राणा इन्द्रियाणि ये शीर्ष्णि जाताश्चक्षुर्द्वयं श्रोत्रद्वयं घ्राणद्वयमास्यगता वाक् चेतीमे प्रभवन्त्युत्पद्यन्ते। सप्तार्चिषः प्राणाग्नीनामर्चिषो विषयावद्योतनरूपा एव दीप्तयस्ता अपि सप्त सप्तेन्द्रियजन्यावद्योतनानामपि सप्त विधत्वौचित्यात्। समिध इन्धनान्यपि प्राणाग्नीनामेषां न काष्ठादिरूपा बाह्याग्नेरिव किन्तु विषयरूपा एव विषयसन्निधाने सत्येवेन्द्रियाणां विषयावद्योतनरूपदीप्तिसम्भवात्। सप्त होमा विषयप्रकाशा विषयेन्द्रियसन्निकर्षा वा तेऽपि सप्तसंख्याकाः तत्तदिन्द्रियजन्यविषयप्र

काशानामिन्द्रियभेदेन सप्तविधत्वात् सन्निकर्षाणामप्येव मेव । सप्त इमे लोका इन्द्रियस्थानभूता गोलकविशेषा इति यावत् । येषु लोकेषु गोलकस्वरूपेण गुहाशया गुहायां शरीररूपायां हृदयरूपायां वा सुषुप्तिकाले श याना इमे सप्ताऽपि शीर्षण्याश्चक्षुरादयः प्राणाश्चरन्ति सञ्चारं कुर्वन्ति । ते प्राणाः सप्त सप्त प्रतिपुरुषं धात्रैव गोलकेषु निहिताः स्थापिताः सन्ति । एतत्सर्वमपि पर मपुरुषादेवाक्षरान्निर्मितमितिभावः ॥८॥

'सप्त प्राणा' इत्यादि । उस अक्षर परमपुरुष परमात्मा से सप्त संख्यक प्राण अर्थात् इन्द्रिय जो कि मस्तक में अवस्थित दो चक्षु दो कान दो घ्राण तथा मुखान्तर्गत वाणी ये सात प्राण परमपुरुष से उत्पन्न हुए। सात प्रकार का अर्चिष प्राणरूपी अग्नि के विषय के प्रकाशक दीप्ति विशेष ये सात हैं क्योंकि सप्तेन्द्रियजन्य ज्ञान भी सात ही है तथा सात प्रकारक इन्धन, बाह्य अग्नि का जिस तरह काष्ठादि लक्षण इन्धन है एतादृश इन्धन इन प्राणाग्नियों का नहीं है-किन्तु विषयरूप ही इनका इन्धन है क्योंकि विषय का सामीप्य रहने से ही विषय प्रकाशनरूप दीप्तियों की संभावना होती है सात प्रकार का होम अर्थात् सात प्रकार का विषय प्रकाश अथवा सात प्रकार का इन्द्रिय सन्निकर्ष ये भी सात

प्रकार के हैं क्योंकि तत् तत् इन्द्रियजन्य जो विषय प्रकाश वह भी इन्द्रिय भेद से सात प्रकारक है। सात यह लोक इन्द्रिय स्थानरूप गोलक विशेष है जिस गोलक स्वरूप लोक में शरीररूप गुहा में विद्यमान अथवा हृदयरूप गुहा में सुषुप्तिकाल में विद्यमान सात ये चक्षुरादिक प्राण संचरण करते हैं। वे प्राण सातों प्रति पुरुष में स्थापित हैं। ये सब पदार्थ परमपुरुष अक्षरात्मक परमात्मा श्रीरामजी से उत्पन्न होते हैं ॥८॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यंदन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः। अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥

इसी परब्रह्म श्रीरामजी से सात समुद्र एवं सभी पर्वत उत्पन्न हुये इसी परब्रह्म से ही सर्वरूप वाली सिन्धु गंगा आदि प्रवाहित होती हैं और इस श्रीरामतत्त्व से ही सभी ओषधियां तथा रस भी निष्पन्न होते हैं। अतः नाशरहित परपुरुष श्रीरामजी सभी भूतवर्गों से संपृक्त सभी के अन्तरात्मा के रूपमें रहते हैं ॥९॥

समुद्राः क्षारोदधिक्षीरोदधिदध्युदधिप्रभृतयः सप्त अपि सागरा गिरयो हिमाचलविन्ध्याचलोदयाचलास्ताचलप्रभृतयोऽनेकविधास्ते सर्वेऽपि अत एतस्मादेवाक्षरात् प्रभवन्तीत्यर्थः। सिन्धवो नद्यः सरयूगङ्गायमुनाप्रभृतयः सर्वरूपा यावत्यः प्रसिद्धा अप्रसिद्धाश्च ता

अपि सरितोऽस्मादेवाक्षरात् स्यन्दन्ते प्रस्त्रवन्ति । सर्वाः समस्ता ओषधयो ब्रीहियवादिरूपा लतागुल्मादिरूपाश्च । तथा रसा मधुरादिभेदेन षड् विधा लताद्यौषधिनिर्यासरूपाश्च ते सर्वेऽपि अतः परमपुरुषादेव भवन्ति । ब्रीहियवादीनां पृथिवीत उपजायमानत्वदर्शनाद् रसानां च तत्तदोषधिभ्यो निर्गमदर्शनात् । परमात्मनः सकाशादुत्पत्तौ संशयवारणायाह-येन हेतुना एषः परमपुरुषो भूतैः पृथिव्यादिभिरोषधिरसात्मकैश्च परमात्मशरीरभूतैर्विशिष्टस्तिष्ठते वर्तते । अन्तरात्मा सर्वभूतान्तर्गत आत्मा अतो हेतोः परमात्मप्रकारभूतैः पृथिव्यादिभिर्जायमाना अपि ओषधयो रसाश्च परमात्मन एव जाताः तस्मात् सर्वस्य हेतुरयमेवाक्षरः परमात्मेतिभावः । हि शब्दो हेतुत्वबोधनार्थः ॥९॥

'अतः समुद्रा' इत्यादि । क्षीरोदधि लवणोदधि प्रभृतिक सातों समुद्र तथा हिमाचल विन्ध्याचल उदयाचल प्रभृतिक अनेक प्रकारक पर्वत समुदाय ये सब इस अक्षर परमपुरुष से सर्गादि में समुत्पन्न होते हैं अर्थात् सब प्रकार के समुद्र तथा पर्वत राशियों का प्रादुर्भाव परमात्मा से ही होता है । एवं सिन्धु अर्थात् सरयू गंगा यमुना प्रभृतिक जितनी प्रसिद्ध अप्रसिद्ध नदियाँ स्यन्दमाना होती हैं अर्थात् नदी समुदाय की उत्पत्ति भी इसी

अक्षर परमपुरुष से ही होती है। तथा सर्व प्रकार के ब्रीहि यवादि स्वरूप एवं लता गुल्म प्रभृतिक ओषधियों की उत्पत्ति होती है। तथा सर्वप्रकारक जो रस अर्थात् मधुर लवणादि भेद से छ प्रकार का तथा लता ओषधि का रसरूप सर्वरसों की उत्पत्ति उस अक्षर परमपुरुष से ही होती है। यद्यपि ब्रीहि यवादिक की उत्पत्ति तो पृथिवी से देखने में आता है तथा ओषधियों से रस का प्रादुर्भाव देखने में आता है। तब परमात्मा से इन सब वस्तुओं का प्रादुर्भाव नहीं होता है एतादृश संशय का निराकरण करने के लिये कहते हैं-**'येनैष भूतैरित्यादि'** जिस कारण से यह परमपुरुष भूतों से अर्थात् पृथिव्यादिक तथा ओषधि रसात्मक शरीर से विशिष्ट हो करके वर्तमान है। तथा सर्वभूतों की अन्तरात्मा अर्थात् सर्वभूतों के अन्तर्गत है इसी कारण से परमात्मा के प्रकार विशेषणरूप पृथिव्यादिक से जायमान भी ओषधि तथा रस परमात्मा से ही जायमान होते हैं अतः सब पदार्थों का कारणरूप परमात्मा श्रीराम ही हैं। तदन्य में जो कारणता है वह औपचारिक है। मन्त्रघटक हि शब्द हेतु बोधक है ॥९॥

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽवि

द्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥१०॥

卐 इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥२।१॥ 卐

यह जड तथा अजड रूप सारा विश्व परपुरुष परब्रह्म श्रीरामरूप ही है अतः कर्म तप एवं परम अमृत परतत्त्व ब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं हे प्रियदर्शन ? जो साधक इस ब्रह्मतत्त्व को हृदय गुफा में सन्निहित रूपसे जानता है वह साधक इस देह में स्थित अविद्या के ग्रन्थि को विनष्ट कर देता है परिणामस्वरूप सायुज्यमुक्ति का भागी होता है ॥१०॥

卐 लघुदीपिकायां प्रथमः खण्डः 卐

सर्वान्तरात्मभूतपरमपुरुषादुत्पन्नत्वादिदं दृश्यमानं विश्वं समस्तं जगत् पुरुष एव पुरुषोपादानकत्वात् पुरुषात्मकमेव तस्मात् परमपुरुषे सर्वोपादानभूते विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीत्युत्तरमुक्तं भवति । 'कस्मिन्नुभगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवती'ति प्रश्नस्य पूर्वं कृतस्येतिभावः । कर्म तपः, तस्य परम पुरुषकर्म जगत्सर्जनादिरूपं यत् तत् तपः संकल्परूपं ज्ञानमेव नान्यत् । न हि संकल्पातिरेकेण कश्चिद् व्यापा रोऽपरः समाश्रीयते जगद्विधानाय परमात्मना तस्मात् तपःशब्दितसंकल्पात्मकज्ञानमेव तदीयसर्जनादिव्यापार इत्यर्थः । ज्ञानिनाञ्च मुक्तानां परामृतं परमुत्कृष्टममृत ममृतवदास्वाद्यं भोग्यमितियावत् । ब्रह्मैवाक्षराख्यपर मपुरुष एवेत्यर्थः । हे सोम्य प्रियदर्शन एतदक्षराख्यं

परंब्रह्म गुहायां हृदयकुहरे निहितं वर्तमानम् । व्याप कत्वादन्तर्हृदये स्थितमित्येतत् । य उपासको वेद जानाति सोऽक्षरब्रह्मज्ञानवानुपासकोऽविद्याग्रन्थिमविद्या ग्रन्थिरिवेत्यविद्या ग्रन्थिस्ताम् ग्रन्थितुल्यां दृढतया दुःखेन पृथक् कर्तुमर्हामविद्या विकिरति विक्षिपति । इह अत्रैव लोके एतदक्षरपुरुषज्ञानरूपया विद्ययाऽवि द्याऽस्य विनश्यतीति कर्मवीजमस्य दग्धतया न संसारां कुरमारभते पुनरितिभावः ॥१०॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्योपेते

द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥२-१॥ 卐

'पुरुष एवेदमित्यादि' सबका अन्तरात्म स्वरूप परमपुरुष से उत्पन्न होने के कारण यह प्रत्यक्ष परिदृश्य मान यह विश्व समस्त जगत् पुरुष स्वरूप ही है अर्थात् पुरुषोपादानक होने से पुरुषात्मक ही है । अतः सबका उपादान स्वरूप परमपुरुष का विज्ञान होने पर ये सब पदार्थ विज्ञात होते हैं-यह उत्तर कहा गया जिसके ज्ञान से ये सब पदार्थ विज्ञात होते हैं ऐसा प्रश्न जो पूर्व में किया था उसका यह उत्तर दिया गया-**'कर्मतप'** उस परमपुरुष का जो जगत्सर्जनरूप कार्य है वह तप है अर्थात् संकल्पात्मक ज्ञानरूप ही है, तदतिरिक्त नहीं है । क्योंकि संकल्प से अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यापार को

ले करके परमात्मा जगत् को बनाते नहीं हैं इसलिये तपः शब्द वाच्य संकल्पात्मक ज्ञान ही परमात्मा का व्यापाररूप है। वह सर्वजनक परमात्मा ज्ञानी तथा मुक्त आत्मा का **परामृत** है अर्थात् परम अति उत्कृष्ट अमृत के समान आस्वाद्य अर्थात् भोग्य है। ब्रह्म ही अक्षराख्य परमपुरुष हैं। हे सोम्य प्रियदर्शन ? यह जो अक्षररूप परब्रह्म हैं वह गुहा हृदयाकाश में वर्तमान हैं अर्थात् सर्वव्यापक होने से सबके अन्तःकरण में अवस्थित हैं। जो उपासक इसप्रकार से परमपुरुष को जानता है वह उपासक अर्थात् अक्षर ब्रह्मज्ञानवान् उपासक ग्रन्थि के समान अविद्या ग्रन्थि को जो कि दृढता के कारण दुःखपूर्वक पृथक् करने के योग्य है तादृश अविद्या का निराकरण करता है। अर्थात् इसी लोक में अक्षरपुरुष ज्ञानरूप विद्या से अविद्या का विनाश हो जाता है। अर्थात् इसका कर्मरूप बीज दग्ध हो जाने से संसार अंकुर का उत्पादक नहीं होता है। संसार सागर को अतिक्रमण करके साकेत लक्षण परमपद को प्राप्त कर जाता है। पुनः संसार में नहीं आता है ॥१०॥

॥ इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यप्रकाशे द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

卐

❀ सर्वेश्वर श्री सीतारामाभ्यां नमः ❀

卐 अथ द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः 卐

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्स मर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ स दसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्टं प्रजानाम् ॥१॥

卐 प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः 卐

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

आविः-प्रकाश स्वरूप जीवों के अन्तःकरण में रहते हुये भी हृदय स्वरूप गुफा में रहने से दुर्विज्ञेयतया प्रसिद्ध महान् जीवों से प्राप्य पद है जो जागते या चलते हुये प्राण धारण करते हुये एवं सोते हुये यह सभी प्राणिवर्ग उस परब्रह्म में ही समर्पित है । सत् एवं असत् वर्गों से संपूजित इस परब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी को जान लो जो ब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी जीवात्म तत्त्व से पर है एवं सभी प्रजाओं में वरिष्ठ-श्रेष्ठ है ॥१॥

पूर्वत्र प्रतिपादितस्याक्षरपुरुषस्य परब्रह्मणो ज्ञानं येनोपायेन भवति तमुपायं प्रदर्शयति खण्डेऽस्मिन् । तस्यैवाक्षरस्य स्वरूपशोधनाय विशेषयति-आविरित्ये तदव्ययमाविर्भूतार्थकम् । आविर्भूतमेतत् साक्षात्कार वतां योगिनाम् । तदीयप्रत्यक्षविषयभूतमित्येतत् । यद्वा आविः स्वप्रकाशम् । न तत्प्रकाशाय प्रकाश कान्तरापेक्षेतियावत् । सन्निहितं सर्ववस्तुषु सम्बद्ध

मित्यर्थ । गुहायां हृदयाभ्यन्तरे चरति वर्तत इति गुहाचरम् । अन्तरात्मतया सर्वप्राणिहार्दाकाशसंचारीत्यर्थः । नाम प्रसिद्धं श्रुतिस्मृतिषु गुहाचरत्वेन महत्पदरूपतया चेत्यर्थः । महत् सर्वत उत्कृष्टं पदं पद्यते गम्यतं इति व्युत्पत्या प्राप्यम् । सर्वोत्कृष्टं प्राप्यमिदमेव सर्वेषामिति भावः । उक्तञ्चास्मदाचार्यपादैः श्रीराघवानन्दाचार्यैः परप्राप्तिप्रबोधे 'साकेते परमप्राप्यः श्रीरामः सकलेश्वरः' इति । अस्य महत्पदमित्येवंकथने हेतुर्वदति-अत्रास्मिन्नक्षराख्ये परमात्मनि एतत् सर्वमर्पितम् । अरा इव रथनाभौ सर्वमस्मिन् निःस्यूतमित्यर्थः । एतत्पदार्थमेव विवृणोति स्वयम्-एजत् प्राणत् निमिषच्च यत् । मध्यमणिन्यायेन प्राणत् पदमेजदित्यनेन निमिषदित्यनेन च सम्बध्यते । एजत् कम्पमानम् । चलदित्येतत् । प्राणत् प्राणभृत् । यत् प्राणभृत् पशुपक्ष्यादि चलत् तत्सर्वमस्मिन् समर्पितमित्यर्थः । यत् प्राणभृत् निमिषन् निमेषव्यापारवन् मनुष्यपशुप्रभृति तदपि सर्वमस्मिन् समर्पितम् । चकाराद् यदन्यच् चलद्भिन्नमचलत् स्थावरं लतागुल्मवृक्षादिकं यच्च निमिषद्भिन्नं निमेषव्यापाररहितं देवादिकं तदपि सर्वमस्मिन् समर्पितम् । यच्चान्यत् प्राणभृतः तदप्यचेतनजातमस्मिन् समर्पितम् । एतेन चिदचित्स्वरूपं सर्वमेवात्र

समर्पितम् । अतः सर्वाधारभूतमेतत् । तस्मान्महत्पद मित्युच्यत इतिभावः । एतत् सर्वाधारभूतमक्षरं ब्रह्म जानथ अवगच्छत हे शिष्याः श्रेयसे । एतज् ज्ञानमेव परमश्रेयः-साधनमिति हेतोरेतज् ज्ञानायैव यतध्वमिति भावः । एतदिति पुनर्विशिनष्टि-सदसद्वरेण्यम् । सत् स्थूलतया दृश्यमानं कायात्मकं वस्तु । असदिति सूक्ष्म स्वरूपं कारणात्मकं वस्तु । ताभ्यां सदसद्भ्यां स्थूल सूक्ष्मवस्तुभ्यामित्येतत् । वरेण्यं वरणीयं प्रार्थनीयं स्वा धाररूपतया स्थूलसूक्ष्मात्मककार्यकारणवस्तुप्रार्थ्य मिदमेवेतिभावः । पुनः कीदृशमित्यत्राह-परं विज्ञा-नात् । विज्ञानशब्दोऽत्र जीववाची 'यो विज्ञानेतिष्ठन्नि' तिश्रुतेः । विज्ञानाज्जीवात् परं श्रेष्ठम् । इदमक्षरं ब्रह्म जीवापेक्षया श्रेष्ठमतो जीवभिन्नमित्यर्थः । हृदयगु हावर्त्तित्वाज्जीव एवायमिति न भ्रमितव्यमितिभावः । यत् प्रजानां वरिष्ठं यदक्षरं ब्रह्म प्रजानां जीवानां वरिष्ठ मतिशयेन प्रार्थ्यं यस्मादिदमेव परमं प्राप्यं परमं प्राप क्ष्च, 'यमेवैष वृणुते तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वामि'ति श्रुत्यन्तरोक्तेरितिभावः ॥१॥

पूर्व में प्रतिपादित जो अक्षरपुरुष परब्रह्म है तादृश ब्रह्म का ज्ञान जिस उपाय से होता है उस उपाय का प्रदर्शन प्रकृत खण्ड में बतलाते हैं । उस अक्षरपुरुष के

स्वरूप के परिशोधन करने के लिये विशेषण को बतलाने के लिये कहते हैं-‘**आविः**’ इति । आविर्भूत अर्थ का प्रतिपादक **आविः** यह अव्यय पद है ब्रह्म साक्षात्कारवान् योगियों के लिये यह अक्षर परमपुरुष आविर्भूत होते हैं । अर्थात् योगि के प्रत्यक्ष का विषय परमात्मा श्रीरामजी हैं । यद्वा आविः शब्द का अर्थ है स्वप्रकाश अर्थात् अक्षर पुरुष के प्रकाश के लिये प्रकाशान्तर की आवश्यकता नहीं है । यह अक्षर ब्रह्म सन्निहित है अर्थात् सर्व वस्तु के साथ संबद्ध हैं । यह ब्रह्म **गुहाचर** हैं गुहा हृदय के अभ्यन्तर में जो चले उसे गुहाचर कहते हैं । अर्थात् सर्वप्राणी का अन्तरात्म स्वरूप होने के कारण सर्वप्राणी के हृदयाकाश में संचरणशील हैं । नाम शब्द प्रसिद्धार्थक है श्रुतिस्मृति में गुहाचर रूपसे तथा महत्पद रूपसे प्रसिद्ध हैं । महान् सर्वापेक्षया उत्कृष्ट पद अर्थात् प्राप्य परमात्मा हैं । पद्यते प्राप्यते इति पदम् इस तरह पद शब्द की व्युत्पत्ति करने से पद शब्द का अर्थ होता है प्राप्य । सर्वापेक्षया उत्कृष्ट सबसे प्राप्त करने के योग्य यही परमात्मा हैं इस बात को मेरे आचार्यपाद श्रीराघवानन्दाचार्यजी ने ‘**परप्राप्ति प्रबोध**’ नामक निबन्ध में कहा है-‘सकलप्राणियों का ईश्वर शासक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही साकेतरूप दिव्य

परधाम-स्थान में सबके प्राप्य हो करके अवस्थित हैं' परमेश्वर को महत्पद से कहने में हेतु का कथन करते हैं-**'अत्रैतत्समर्पितम्'** इत्यादि । इस अक्षर पदवाच्य परमात्मा में ये परिदृश्य मान स्थावरजंगम सब पदार्थ समर्पित हैं रथ नाभि में अरा के समान । यहाँ **एतत् समर्पितम्** में एतत्पद वाच्य पदार्थों का विस्पष्ट करते हैं-**'एतदित्यादि'** देहली दीप न्याय से प्राणत् पद एजत् के साथ तथा निमिषत् के साथ संबद्ध होता है । **एजत्** का अर्थ होता है कंपाय मान चलायमान **प्राणत्** का अर्थ है प्राणधारी जो प्राण धारी पशुपक्षी प्रभृतिक चलायमान पदार्थ हैं वे सब परमपुरुष में समर्पित हैं । और जो प्राणधारी **निमिषत्** निमेषोन्मेष व्यापारवान् मनुष्य प्रभृतिक हैं वे सब भी इसी अक्षर परब्रह्म में समर्पित हैं । जो चलन व्यापार रहित स्थावर पर्वतादिक लता गुल्मादिक हैं तथा जो निमेषादि व्यापार से रहित देवादिक हैं वे सब भी इसी परमपुरुष अक्षर पदवाच्य में समर्पित हैं यह मन्त्रस्थ च शब्द से संगृहीत होते हैं । जो कोई प्राणधारी से अन्य है अचेतनवर्ग वह भी इसी ब्रह्म में समर्पित हैं । एतावता चित् अचित् सब पदार्थ इसी ब्रह्म में समर्पित हैं यह बतलाया गया । इसलिये पदार्थ मात्र का आधारभूत अक्षर ब्रह्म है । इसलिये

अर्थात् सर्वपदार्थ के आधार होने से महत्पद ब्रह्म कहलाते हैं-हे शिष्यों ? स्व कल्याण के लिये इस सर्वाधार अक्षरपुरुष को जानो, इसीका ज्ञान परमकल्याण का साधन हैं अतः ज्ञान के लिये प्रयत्न करो। एतत् पद प्रतिपाद्य परमात्मा का पुनर्विशेषणान्तर से प्रतिपादन करते हैं-**'सदसद्वरेण्यमिति'** सत् अर्थात् स्थूल रूपसे परिदृश्यमान जो कार्यात्मक पदार्थ तथा-**'असत्'** अर्थात् सूक्ष्म स्वरूप कारणात्मक पदार्थ एतादृश सदसत् स्थूल सूक्ष्म वस्तुओं से वरेण्य वरणीय अर्थात् प्रार्थनीय स्व के आधार स्वरूप होने से स्थूल सूक्ष्म लक्षण कार्य कारण वस्तु से प्रार्थनीय यही अक्षरात्मक परमपुरुष हैं। पुनः वह परमपुरुष कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'परं विज्ञानादिति'** विज्ञान से पर। यहाँ विज्ञान शब्द विज्ञान का आधार जो जीव तादृश जीव का वाचक है। **'यो विज्ञानेतिष्ठन्'** इत्यादि श्रुत्यन्तर कहता है। तस्मात् विज्ञानवान् जो जीव समुदाय उससे पर अर्थात् श्रेष्ठ है अर्थात् यह अक्षर ब्रह्म जीव की अपेक्षया श्रेष्ठ है अतः जीव भिन्न यह अक्षर ब्रह्म है। यह परम पुरुष गुहान्तर्वर्ती होने से जीवरूप ही है इसप्रकार भ्रम से भ्रान्त नहीं होना चाहिये **'यत्प्रजानां वरिष्ठमिति'** जो अक्षर ब्रह्म प्रजा जीवों से वरिष्ठ हैं अतिशयेन प्रार्थ्य हैं

इसलिये यही अक्षर ब्रह्म परमप्राप्य हैं तथा परमप्रापक भी हैं क्योंकि-'**यमेवैष वृणुते**' इत्यादि श्रुत्यन्तर से यही अर्थ सिद्ध होता है ॥१॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिल्लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङमनः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥२॥

जो परब्रह्म श्रीरामजी प्रकाशवान् हैं एवं जो अणु से भी अणु हैं जिस श्रीरामतत्त्व में भूर्लोक प्रभृति सभी लोक तथा उन लोकों के सभी प्राणी निहित हैं वही यह अक्षर ब्रह्म श्रीरामजी हैं वही श्रीरामतत्त्व प्राण है वाणी एवं मन भी है तथा वही अविनाशी ब्रह्म सत्य है एवं अमृत है हे सोम्य ? वही परब्रह्म तत्त्व श्रीराम एकान्त मन से वेधने योग्य है ऐसा जानो ॥२॥

एतज्जानथेत्यत्र ज्ञानमात्रं विहितमत्र मन्त्रे तज्ज्ञानं ध्यानरूपमिति व्यञ्जनया प्रतिपादयितुमाह-यदक्षरं ब्रह्म अर्चिमत् । अर्चिश्शब्दो मतुबन्तः । सलोपस्तु छान्दसः । अर्चिर्दीप्तिः तद्विशिष्टमर्चिमत । दीप्तिश्च प्रकाश एव । 'यस्य भासा सर्वमिदं विभाती'तिश्रुत्यन्तरात् । प्रकाशैकरसस्य प्रकाशेन याचितमण्डनन्यायेनान्येषां प्रकाशवत्त्वं युक्तमेवेतिभावः । अणुभ्यः सूक्ष्मेभ्यः श्यामाकादिभ्योऽपि अणु सूक्ष्मम् । सर्वतः सूक्ष्म

मेतदितिभावः । यस्मिन्नक्षरे परमात्मनिलोका भूर्भुवः स्वरादयश्चतुर्दशप्रसिद्धा एव । लोकिनस्तत्तल्लोकनिवासिनो देवमनुष्यादयः तेषु वर्तमाना व्रीहियवादिपदार्थाश्च । इमे सर्वेऽपि निहिता अरा इव नाभौ समर्पिताः । सर्वाधारभूतमेतदितिभावः । तत् सर्वाश्रयभूतमेतदक्षरं ब्रह्मैवेत्यर्थः । स प्राणः प्राणवायुः तत् तदात्मक एव । उशब्दस्यावधारणार्थकस्यात्राप्यन्वयात् । तदु वाङ्मनः वागिति ज्ञानकर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणं मन इत्यान्तरेन्द्रियाणाम् । तथा च सर्वाणि बाह्यान्यान्तराणि चेन्द्रियाणि तदात्मकान्येवेत्यर्थः । तदेतत्सत्यं तदेतदक्षरं ब्रह्मसत्यं सत्यस्वरूपम् । नित्यमित्येतत् । अमृतमविनाशि यद्वाऽमृतममृतवदुपभोग्यं मुक्तिदशायामित्यर्थः । तद्वेद्धव्यं विद्धि हे सोम्य सोम इव दर्शनीयस्वरूप शिष्य । एतेनानुकम्पा शिष्ये व्यज्यते । तदक्षरं ब्रह्म वेद्धव्यं मनसा वेधनीयं शरेण लक्ष्यमिव समाहितेन मनसा वेधनीयम् । ज्ञातव्यं ध्यानगन्यमित्येतत् । विद्धि जानीहि । अस्मिन् ते मनः समाधानं कुरु यदि परमं श्रेयः कामयस इतिभावः । अनेन ज्ञानस्य ध्यानरूपता व्यज्यत इति चिन्तनीयम् ॥२॥

प्रथम मन्त्र में-'**एतज्जानथ**' इससे ब्रह्मज्ञान मात्र विधान किया गया है और इस मन्त्र में ब्रह्मज्ञान

ध्यानरूप है इस बात को व्यञ्जना से बतलाने के लिये द्वितीय मन्त्र का उत्थान होता है-'**यदर्चिमदित्यादि**' जो अक्षर ब्रह्म अर्चिमान् है यह अर्चिष् शब्द मतुप् प्रत्ययान्त है छान्दसत्वात् सकार का लोप हो गया है अर्चिष् का अर्थ है दीप्ति प्रकाश तद्वान् अक्षर ब्रह्म हैं। दीप्ति तथा प्रकाश दोनों पर्यायवाची हैं। घट कलसादि वत्। जिसके प्रकाश से यह सब पदार्थ प्रकाशित होता है ऐसा श्रुत्यन्तर में भी कहा गया है। प्रकाशैक रस स्वरूप जो परमात्मा अक्षर ब्रह्म उसके प्रकाश से तदितर सब पदार्थ प्रकाशित होता है तथा **याचितमण्डनन्याय** से इतर पदार्थ भी प्रकाशवान् कहलाता है। अणु सूक्ष्म जो श्यामकादि पदार्थ उससे भी अणु अर्थात् अति सूक्ष्म अक्षर ब्रह्म है। अर्थात् सर्वापेक्षया अतिसूक्ष्म अक्षर ब्रह्म है। जिस अक्षर ब्रह्म परमात्मा में भूर्भुवः स्वरादिक प्रसिद्ध चतुर्दश लोक तथा लोकी अर्थात् तत्तत् लोक में निवास करनेवाले देव मनुष्यादिक तथा ब्रीहि यवादिक पदार्थ हैं वे सब पदार्थ रथ नाभि में अरा के समान समर्पित हैं। अर्थात् सब पदार्थ का आधारभूत अक्षर परमपुरुष हैं। वह सबका आश्रयभूत अक्षर ब्रह्म हैं। वह प्राण अर्थात् प्राण वायु भी अक्षर ब्रह्मरूप है। अवधारणार्थक उ शब्द का यहाँ भी अन्वय है। वह

अक्षर ब्रह्म वाणी मन रूप है । यहाँ वाक् शब्द ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय का उपलक्षक है और मनः पद आन्तर इन्द्रियों का उपलक्षक है तब फलितार्थ ऐसा होता है कि सब बाह्येन्द्रिय तथा आन्तर इन्द्रिय अक्षर ब्रह्मात्मक हैं । **'तदेतत्सत्यमिति'** वह यह अक्षर ब्रह्म सत्य स्वरूप है अर्थात् त्रिकालावाधित है नित्य है । और यह अक्षर ब्रह्म अमृत है अविनाशी है अथवा मोक्ष समय में अमृत के समान उपभोग योग्य है । हे सोम्य प्रियदर्शन ? सोम के समान प्रियदर्शन शिष्य ? इस सम्बोधन से शिष्य में अति अनुकम्पा व्यक्त होती है एतादृश अक्षर ब्रह्म वेद्धव्य मन से वेधन करने के योग्य है जिस तरह कोई धानुष्क शर से लक्ष्य को वेधित करता है उसी तरह समाहित मन से बेधनीय है ध्यान करने के योग्य है ऐसा तुम जानो । अर्थात् यदि तुम परमश्रेयस के कामनावान् हो तब तुम इस अक्षर ब्रह्म में मनका समाधान करो । इससे ज्ञान में ध्यानरूपता को अभिव्यक्त किया गया है । मनसे अक्षर का ध्यान करना चाहिये ॥२॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्दधीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥३॥

उपनिषदों में प्रसिद्ध ओंकारस्वरूप धनुष को धारणकर श्रीरामजी की उपासनारूप शान से तीक्ष्ण किया हुआ श्रीराम महामन्त्र स्वरूप महान् अस्त्र से योजित जीवात्मारूप बाण को सन्धान करे भगवत् परायण चित्त के द्वारा उस ओंकार स्वरूप धनुष को शेष शेषीभाव प्रकाशक रूपसे अनुसन्धान करके ही हे सोम्य ? वह अक्षर ब्रह्मतत्त्व दर्शन करने योग्य है ऐसा जानो ॥३॥

तद्वेद्धव्यमित्युक्तम् । कः स वेधनप्रकार इति वक्तुमुपक्रमते-धनुर्गृहीत्वौपनिषदं । महास्त्रम् । उपनिषत्सु प्रसिद्धमौपनिषदं महास्त्रम्-अस्यते क्षिप्यते बाणादिकमनेनेत्यस्त्रं महच्च तदस्त्रमिति महास्त्रमेवंभूतं धनुः प्रणवरूपं बाणासनं गृहीत्वाऽऽलम्ब्य 'एतदालम्बनं श्रेष्ठमि'त्यादिश्रुतेः । आदायेति यावत् । उपासानैरन्तर्येण स्थूलसूक्ष्मशरीरान्तःकरणादिविलक्षणतयाऽऽत्मपरिचिन्तनं तया निशितं तीक्ष्णीकृतम् । परिसंस्कृतमित्येतत् । शरं प्रत्यगात्मलक्षणं बाणं सन्दधीत संदध्यात् । प्रणवाख्ये धनुषि प्रत्यगात्मस्वरूपं नियोजयेदितिभावः । ततश्च संधानान्तरं तदात्मरूपशरविशिष्टं प्रणवाख्यं धनुरायम्य समाकृष्य भावगतेन चेतसा भावः प्रत्यगात्मपरमात्मनोः शेषशेषिभावविषयिणी भावना । तद्गतेन तादृशीं भावनां प्राप्तेन चेतसाऽन्तःकरणेन । चेतसः प्रणवरूपधनुःसमाकर्षणे करणतयान्वयो लौकिकधनुषः समाकर्षणे हस्तस्येव । प्रणव

धनुषः समाकर्षणं चेतसा किंस्वरूपमितिचेज्जीवात्मपरमात्मनोः शेषशेषिभावरूपं स्वार्थं प्रणवः बोधयतीत्यनुसन्धानमेवेत्यवेहि । लक्ष्यं वेद्धव्यं तु तदेव पूर्वोक्तस्वरूपमेवाक्षरमक्षराख्यं परंब्रह्मेति विद्धि जानीहि । हे सोम्य सोमवद् रमणीयशिष्येत्यर्थः ॥३॥

उस अक्षर ब्रह्म को वेधित करो ऐसा द्वितीय मन्त्र में कहा गया है । उसमें वेधन के प्रकार को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं–'**धनुर्गृहीत्वेत्यादि**' उपनिषद् में प्रसिद्ध जो औपनिषद् महास्त्र बाण प्रक्षिप्त हो जिससे उसे अस्त्र कहते हैं महान् जो अस्त्र वह महास्त्र एतादृश जो धनुष प्रणवरूप बाणासन उसका ग्रहण करके आलम्बित करके अर्थात् लेकर के । '**एतदालम्बनम्**' इत्यादि क्रम से श्रुत्यन्तर में भी कहा है । उपासा का अर्थ है निरन्तर स्थूल सूक्ष्म शरीर अन्तःकरणादि विलक्षण भिन्नरूप से आत्मा का चिन्तन एतादृश उपासा से निशित तीक्ष्णीकृत अर्थात् परिसंस्कृत शर प्रत्यगात्म स्वरूप बाण का संधान करो अर्थात् प्रणवरूप धनुष में प्रत्यगात्म स्वरूप बाण को संस्थापित करो तब संधान के वाद आत्मरूप शर विशिष्ट प्रणव नामक धनुष को खींच करके भावगत चित्त से । उसमें भाव शब्द का अर्थ होता है जीवात्मा परमात्मा में जो शेष शेषीभाव

अंगाङ्गीभाव विषयक भावना तादृश भावना को प्राप्त किया गया जो अन्तःकरण है उससे प्रणवरूप धनुष के आकर्षण में चित्त को करणरूप से अन्वय होता है जिस तरह लौकिक धनुष के आकर्षण करने में हाथ का करणरूप से अन्वय होता है इसी तरह प्रकृत में भी होता है। चित्त के द्वारा प्रणवरूप धनुष का समाकर्षण का स्वरूप क्या है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं जीवात्मा तथा परमात्मा में जो अंगाङ्गीभाव है तद्रूप स्वकीय अर्थ को प्रणव को बोधित करता है इस तरह अनुसन्धान ही समाकर्षण है ऐसा समझो। हे सोम्य अर्थात् चन्द्रमा के समान रमणीय दर्शन शिष्य वेद्धव्य लक्ष्य तो वही पूर्वोक्त स्वरूपक अक्षराख्य परब्रह्म है ऐसा जानो ॥३॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४॥

प्रणव धनुष है एवं आत्मा बाण है तथा वह परब्रह्म श्रीरामजी ही बोधनीय लक्ष्य हैं चंचलता रहित होकर लक्ष्य का वेधन करना चाहिये इस वेधन में शर के समान तन्मय हो जाना चाहिये ॥४॥

पूर्वं सामान्यतो धनुः शर इत्युक्तम्। सम्प्रति नामतो निर्दिशति-प्रणवोधनुरिति। प्रणव ओङ्कार एव धनुरिष्वासः। शरविक्षेपसाधनमित्येतत्। शर इषु

रात्मा जीवः । धनुषा प्रक्षेप्यः शरो भवति । इह तु प्रणवेनालम्बनेन प्रत्यगात्मा परमात्मरूपलक्ष्यं प्रति नीयते तस्माद् धनुःकार्यकारित्वात् प्रणवो धनुष्ट्वेन रूपितः । शरस्तु नीयते धनुषा तद्वत् प्रत्यगात्मा नीयतेऽतः शरतुल्यतया उपासको जीवः शरत्वेन रूपितः । धनुःक्षिप्तः शरः लक्ष्यं विद्ध्वा लक्ष्यान्तर्गतो भवन् लक्ष्याभिन्न इव प्रतीयते तथा प्रणवप्रकाशितशेषशेषिभावरूपार्थानुसन्धानात्मकं वेधं कृत्वा प्रत्यगात्मा स्वस्मिन् ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानरूपतदन्तःप्रवेशवान् तदभिन्न इव प्रतीयतेऽतोऽक्षराख्यः परमात्मा लक्ष्यत्वेन रूपित इतिभावः । तद् आविरित्यादिमन्त्रेण पूर्व-वर्णितं यदक्षरं तदक्षराख्यं ब्रह्मैव लक्ष्यं वेद्धव्यमित्युच्यते । अप्रमत्तेन परमात्मव्यतिरिक्तबाह्याभ्यन्तर वस्तुवासनारहितेन तदेवाग्रेणेति यावत् । मनसेति शेषः । प्रमादरहितमनसा करणेन प्रणवधनुःप्रक्षिप्तः प्रत्यगात्मशरो लक्ष्यवेधनाय समर्थो भवेदितिभावः । वेद्धव्यं शेषशेषिभावानुसन्धानविषयीकर्त्तव्यमित्यर्थः । शरवत् तन्मयो भवेत् । लक्ष्ये प्रविष्टः शरो यथा तन्मयो लक्ष्यभिन्नतयाऽनवभासमानो भवति तथा परब्रह्मणि प्रणवधनुषा प्रापितः प्रत्यगात्मा परब्रह्मात्मकोऽहमित्यनुसन्धानवान् परब्रह्मभिन्नतयानुसन्धानरहितो

भवेदित्यर्थः । अक्षरार्थस्तु शरेण तुल्यं शरवत् तन्मयो लक्ष्यमयः परब्रह्ममयो भवेदिति । एवं समाधिमापन्नः परब्रह्मापेक्षया भेदजनकदेवमनुष्यत्वाद्याकारस्फुरणरहितो भवतीतिभावः । एतदेव च तन्मयत्वशब्दार्थ-तात्पर्यम् ॥४॥

तृतीय मन्त्र में सामान्यरूप से धनुष तथा शर का कथन किया गया है । अब नामपूर्वक उन सब पदार्थ का निर्देश करते हैं-'**प्रणवो धनुरित्यादि**' प्रणव ओंकार धनुष के समान धनुष है अर्थात् शर फेंकने का साधन विशेष है शर इषु जीवात्मा है धनुष से फेंकने का योग्य बाण होता है प्रकृत में तो प्रणवरूप आलम्बन से जीव परमात्म लक्षण लक्ष्य के प्रति नीयमान होता है इसलिये लौकिक धनुष का जो कार्य है उसी कार्य को करने के कारण प्रणव को धनुष उपमान से उपमित किया गया है। और धनुष से बाण नीयमान होता है उसी तरह प्रकृत में जीव नीयमान होता है अतः शर तुल्य होने से उपासक जीव को शर उपमान से उपमित किया गया है। धनुष से फेंका गया बाण लक्ष्य को विद्ध करके लक्ष्य में प्रविष्ट हो करके लक्ष्य से अभिन्न रूपसे प्रतीयमान जैसे होता है उसी तरह प्रणव से प्रकाशित जो शेषशेषीभावरूप जो अर्थ का अनुसन्धान है तदात्मक

वेध करके प्रत्यगात्मा जीव स्व में ब्रह्मात्मकता का अनुसन्धानरूप से ब्रह्म के अन्तःप्रविष्ट होकर ब्रह्म से अभिन्न रूपसे प्रतीयमान होता है इसलिये अक्षररूप जो परमात्मा उसे लक्ष्यरूप से उपमित किया गया है ऐसा भाव है। वह-**'आविः'** इत्यादि मन्त्र से पूर्व वर्णित जो अक्षराख्य ब्रह्म है वही लक्ष्य है तथा वेद्धव्य है यह कहा जाता है। अप्रमत्त हो करके परमात्मा से भिन्न जो बाह्याभ्यन्तर पदार्थ तद्विषयक वासना रहित मन से यानी प्रमाद रहित मनरूप करण से प्रणवात्मक धनुष द्वारा प्रक्षिप्त प्रत्यगात्मरूप जो शर वह लक्ष्य भेदन करने में समर्थ होगा।

'वेद्धव्यम्' शेषशेषीभाव का अनुसन्धान विषय कर्तव्य है। शर बाण की तरह तन्मय होवें। जिसप्रकार से लक्ष्य में प्रविष्ट शर बाण तन्मय हो जाता है अर्थात् लक्ष्य से भिन्नरूपेण अवभासमान नहीं होता है उसी तरह प्रणवरूप धनुष से परब्रह्म में प्रापित जो प्रत्यगात्मा जीव वह परब्रह्मात्मक हो करके अहमेव ब्रह्म इसप्रकार से अनुसन्धीयमान परब्रह्म से भिन्नरूप से अनुसन्धान वाला होवे। **शरवत्तन्मयोभवेत्** यहाँ अक्षरार्थ ऐसा होता है शर से तुल्य शरवत् तन्मय लक्ष्यमय अर्थात् परब्रह्ममय होवें। इसप्रकार से समाधि प्राप्त पुरुष

परब्रह्मापेक्षा से भेदजनक देवमनुष्यादि के आकार के स्फुरण रहित होता है। यही तन्मय शब्द का तात्पर्य होता है ॥४॥

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः। तमेवैकं जानथ आत्मान मन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥५॥

जिस परब्रह्म श्रीरामजी में स्वर्गलोक पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्षलोक एवं समस्त प्राणों के साथ मन व्याप्त है उसी एकमात्र आत्मा-परब्रह्म तत्त्व श्रीरामजी का ज्ञान प्राप्त करो अन्य श्रीरामाभिन्न वाणिओं को त्याग कर दो यही परतत्त्व श्रीराम अमृत-संसार सागर तरने हेतु सेतु है ॥५॥

यस्मिन् अक्षराख्ये परमात्मनि। द्यौर्द्युलोकः। पृथिवी भूर्लोकः। अन्तरिक्षमन्तरिक्षलोकश्च ओतं प्रोतम्। सम्बद्धमित्येतत्। सर्वैः समग्रैः प्राणैः प्राणापानादिभिर्मुख्यप्राणैर्बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियैश्चक्षुरादिभिश्च। सह सहितम्। मनश्च चित्तञ्च ओतम्। तमेव द्युलोकादिसर्वाश्रयीभूतो यस्तमेव एकमद्वितीयम्। चिदचिच्छरीरकस्य परमात्मन एकस्यैव सत्त्वादेकमित्युक्तम्। आत्मानं पूर्वोक्तमक्षराख्यं परमपुरुषं जानथ जानीत हे शिष्याः। अन्याश्चिदचिच्छरीरकपरमात्मभिन्नविषया वाचो वाग्व्यवहारान् विमुञ्चथ त्यजत। तत्र हेतुमाह-

एष परमात्मा सर्वकारणतया सर्वाधारतया सर्वात्मतया च ज्ञातं सन्नमृतस्य अमृतत्वस्य । मुक्तेरित्येतत् । सेतुः प्रापकोऽस्तीतिशेषः । लोके नदीप्रभृतिसेतुः परतीरप्रापको यथा भवति तथा सर्वाधारत्वादिनाऽनुसंहितः परमात्मा संसाराम्भोनिधेः परतीरप्रापक इति सेतुत्वेन रूपित इतिभावः ॥५॥

'यस्मिन्द्यौरित्यादि' जिस अक्षर परमात्मा में द्युलोक पृथिवीलोक भूलोक तथा अन्तरिक्षलोक ओतप्रोत अर्थात् संबद्ध हैं । तथा जिस अक्षर में प्राणापानादि सहित मुख्यप्राण तथा बाह्य आभ्यन्तर चक्षुरादि के साथ मन अन्तःकरण ओत प्रोत है । उसी द्युलोकादि के आश्रयरूप जो एक अद्वितीय है चिदचित् शरीरक परमात्मा के एक होने से एकम् ऐसा कहा गया है । एतादृश पूर्वोक्त अक्षर परमपुरुष को हे शिष्यगण ? जानो । अन्य वाणी को अर्थात् चिदचित् शरीर परमात्मा से भिन्न विषयक वाग्व्यवहार को छोडो । क्यों तो इसमें हेतु बतलाते हैं-**'अमृतस्यैष सेतुरिति'** यह सर्वाधार अक्षर परमात्मा श्रीराम का सर्वकारण सर्वाधार तथा सर्वात्मरूप से ज्ञान होने पर अमृतत्व अर्थात् मोक्ष का सेतु प्रापक होते हैं । लोक में जिस तरह नदी का पुल पर तीर का प्रापक होता है उसी तरह सर्वाधारत्वादिरूप से अनुध्यात

परमेश्वर श्रीरामजी संसार सागर के परतीर के प्रापक होने के कारण परमात्मा सेतु के उपमान से उपमित होते हैं ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥६॥

जिस हृदय में सभी नाडियां रथ की नाभी में अरों के समान मिले हुये हैं वह व्यापक परब्रह्म श्रीरामजी अनेक प्रकार से अवतरित होते हुये अन्तःकरण में रहता है । अज्ञानरूप अन्धकार से पर पार प्राप्ति हेतु ॐ इस भगवन्नाम से परब्रह्म श्रीरामजी का ध्यान करो ऐसे ध्यान हेतु लगे तुम सवों का कल्याण हो ॥६॥

अरा इव यथा रथनाभौ रथसम्बधिचक्रमध्यगते स्थूले काष्ठविशेषे अराः संगताः सम्बद्धा भवन्ति तथा यत्र यस्मिन् हृदयप्रदेशे सर्वशरीरव्यापिका नाड्यः शिराः संहताः समर्पिताः सन्ति तत्र हृदयप्रदेशे अन्तर्मध्ये । हार्दाकाश इत्येतत् । स एष स प्रकृत एषोऽक्षराख्यः परमपुरुषो बहुधा बहुरूपैर्जायमा-नोऽजायमानोऽपि उपासनाय प्रतिप्राणिहृदयं परमात्मा भिन्नभिन्नवेषं विधाय चरते । वर्तत इत्यर्थः । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' इतिभगवदुक्तेः । तद्धे

षेणैव स सर्वप्राणिनियमनमपि कुरुते । आत्मानं तादृशं परमात्मानम् ओमित्येवं ध्यायत । ओङ्कार मालम्ब्य पूर्वोक्तरीत्या तस्य ध्यानं कुरुतेत्यर्थः । ध्यानफलमाह-तमसः परस्तात् पाराय । तमसः प्रकृति मण्डलस्य संसारस्येतियावत् । परस्ताद् बहिर्वर्तमानाय पाराय परतीराय प्राप्यभूताय । तमःपारभूतपरमात्म प्राप्तये एव परमात्मध्यानमोङ्कारालम्बनेन कुरुतेतिभाव: । वः प्रणवालम्बनेनाक्षरपुरुषध्यानपरेभ्यो युष्मभ्यं स्वस्ति कल्याणं भवतु ।।६।।

'अरा इवेत्यादि' जिस तरह रथ की नाभि में अर्थात् रथ सम्बन्धी चक्र के मध्यगत स्थूल काष्ठ विशेष में अरा संबद्ध होता है । उसी तरह जिस हृदय प्रदेश में सर्वशरीर व्याप्त नाडियाँ संहत वर्तमान हैं उस हृदय प्रदेश अन्तराकाश में यह अक्षर परमपुरुष श्रीरामजी यद्यपि स्वरूप से अजायमान होते हुए भी उपासना के लिये प्रत्येक प्राणी के हृदय में वह परमात्मा श्रीरामजी भिन्न भिन्न रूपसे विद्यमान रहते हैं । 'ईश्वर सर्वभूतों के हृदय प्रदेश में रहते हैं' ऐसा गीता में भी कहा है । उस रूप से परमात्मा सबका नियमन करते हैं । एतादृश अक्षर परम पुरुष को ओंकार के आलम्बन द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान करो । ध्यान का फल बतलाते हैं-

'स्वस्ति वः' इत्यादि। प्रकृति मण्डल अर्थात् संसार के पार में वर्तमान उपासना द्वारा प्राप्य परमात्मा श्रीरामजी की प्राप्ति के लिये ओंकार लक्षण का आलम्बन करके परमात्मा का ध्यान करो। प्रणवरूप आलम्बन द्वारा अक्षर पुरुष के ध्यान में तत्पर आपलोगों का कल्याण हो ॥६॥

यः सर्वज्ञ सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय। तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥७॥

जो परब्रह्म श्रीरामजी सभी विषय के ज्ञान वाले और सभी प्रकार के ज्ञान वाले हैं जिसका भूलोक में सर्वकर्म प्रचालन स्वरूप महिमा है यही परमात्मा श्रीराम दिव्य प्रकाश वाले परमाकाश ब्रह्मपुर-श्रीसाकेत में प्रतिष्ठित हैं। वे मनोमय प्राण तथा शरीर के नायक अन्नमय शरीर में प्रतिष्ठित हैं। उस परतत्त्व श्रीरामजी में हृदय अन्तःकरण के सन्निधान करने पर जो आनन्दस्वरूप अमृत परतत्त्व प्रकाशित होता है उसको धीर साधक विज्ञान के द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥७॥

तमसः परस्ताद् वर्तमानः प्राप्यभूतः परमात्मा ध्यातव्यतया पूर्वमुक्तः स एव विशेषणैः पुनः प्रति

पाद्यते-दुर्विज्ञेयस्य पुनः पुनः प्रतिपादनं हि सुखाव गमसाधनमिति मत्त्वा आह-य इति । यः परमात्मा सर्वज्ञः सामान्यरूपेण सर्वविषयकज्ञानवान् सर्वविद् विशेषरूपेण तत्तद्वस्त्वसाधारणधर्मेण सर्ववस्तुविषयक ज्ञानवाँश्चास्ति । यस्य परमपुरुषस्य एष दृश्यमा-नश्चन्द्रसूर्ययोस्तच्छासनानतिलङ्घिनियतपरिभ्रमणं साग रस्य स्वमर्यादानतिक्रमणं पवनतपनादीनां स्वस्वव्या पारपरायणत्वं तच्छासनादेव कर्मतत्फलादीनां स्वदेश कालानतिक्रमेण प्रवर्तमानत्वमित्यादिरूपो महिमा लीलाविभूतिर्भुवि वर्तत इति शेषः । स एष एवं महिमाविशिष्ट आत्मा परमपुरुषो हि निश्चयेन व्योम्नि अप्राकृताकाशे दिव्ये परमे ब्रह्मणः पुरं ब्रह्मपुरं तस्मिन् ब्रह्मपुरे साकेताख्ये दिव्ये धाम्नि प्रतिष्ठितो दिव्यमूर्त्यावर्तत इत्यर्थः । स एव हि मनोमयः संकल्पयः संकल्पमात्रेणैवास्य प्रतिप्राणिहृदयगुहा प्रवेशः । न तु जीवात्मवत् कर्मवशेनेतिभावः । प्राण शरीरनेता प्राणो मुख्यप्राणः सर्वेन्द्रियाणि च शरी रञ्चान्नपरिणामभूतं शिरःपाण्यादिलक्षणं तयोर्नेता नाय कोऽधिष्ठाता यद्वा शरीरपदेन सूक्ष्मं शरीरमुच्यते प्राण शब्देन च जीवनवान् जीवात्मा । प्राणशरीरयोर्जीवात्म सूक्ष्मशरीरयोर्नेता एकस्माद् देहाद् देहान्तरं प्रति प्रा

पकः परमात्मप्रेरणयैव शरीरान्तरं प्रतिगमनभावात् । अन्ने अन्नमये अन्नपरिणामभूतेऽन्नशरीरे प्रतिष्ठितो वर्तत इति शेषः । साकेताख्यदिव्यधामप्रतिष्ठितोऽपि परम पुरुषः श्रीरामः स्वसंकल्पमात्रेण प्रतिजीवशरीरं प्रतिष्ठित आस्ते । रूपविशेषेण युक्तः सन्निितिभावः । तस्मिन् हृदयगुहान्तर्वर्तमाने परमात्मनि हृदयं मनोऽन्तः करणमित्येतत् । सन्निधाय निवेश्य तद्ध्यानपरो भूत्वेत्येतत् । धीरा विवेकिनो विज्ञानेन साक्षात्कार रूपेण तदक्षरं परमपुरुषमिति यावत् । परिपश्यन्ति परि परितः सर्वतः पूर्णतयेति यावत् । पश्यन्ति उपलभन्ते । तत्कीदृशमित्यत्राह-यदक्षरं ब्रह्म आनन्द रूपमनवधिकातिशयसुखात्मकम् । अमृतमविनाशि संसारलेपवर्जितमिति वा विभाति प्रकाशते । हृदय गुहाशयमेवाक्षरं ब्रह्म धीरा ध्यानरूपोपासनद्वारा अ मृतत्वानन्दरूपतया प्रकाशमानं पूर्णतया साक्षात् कुर्वन्तीत्यर्थः ।।७।।

तमस के परे वर्तमान प्राप्यभूत परमात्मा ध्यान करने के योग्य हैं, ऐसा पूर्व में कहा गया है उसी पर मात्मा के स्वरूप का विशेषण द्वारा प्रतिपादन करते हैं। दुर्विज्ञेय परमात्मा का पुनः पुनः कथन करते हैं जिससे कि सरलतापूर्वक ज्ञान हो इस तात्पर्य से-**'यः सर्वज्ञः'**

इत्यादि । जो परमात्मा सर्वज्ञ हैं अर्थात् सामान्य रूपसे सर्वविषयक ज्ञानवान् हैं तथा जो सर्ववित् है अर्थात् विशेषण रूपसे तत्तद् साधारण धर्म द्वारा सर्वविषयक ज्ञानवान् है । जिस परमपुरुष का यह परिदृश्यमान चन्द्रमा सूर्य परमेश्वर की आज्ञा का अतिलङ्घन न करके नियत रूपसे निरालम्ब मार्ग में परिभ्रमण करते हैं तथा समुद्र अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता है । एवं वायु अग्नि नियत रूपसे स्वकीय कार्य करने में सतत तत्पर रहते हैं तथा जिस परमपुरुष की आज्ञा से अग्निहोत्रादि कर्म स्वकीय फल के उत्पादन करने में स्वकीय देश तथा काल का अतिक्रमण न करके प्रवर्तमान रहते हैं एतादृश महिमा अर्थात् लीला विभूति इस संसार में है । वह यह एवं विध महिमायुक्त पर मात्मा परमपुरुष है । यहाँ हि शब्द निश्चयार्थक है । नियमतः व्योम अप्राकृताकाश दिव्यमूर्ति को धारण करके विद्यमान है । वह यह मनोमय संकल्पमय है जो यह परमेश्वर श्रीरामजी स्वकीय संकल्पमात्र से प्रतिप्राणी की हृदयरूप गुहा में प्रविष्ट हैं नतु जीववत् कर्मपराधीन हो करके गुहानिवासी हैं, जो प्राण तथा शरीर के नेता हैं मुख्य प्राण लक्षण प्राण सर्वेन्द्रिय अन्न का परिणाम शिरः पाण्यादि लक्षण कलेवर के नेता नायक अधिष्ठाता

है। यद्वा प्राण शरीर का नेता अर्थात् शरीर पद का अर्थ है सूक्ष्म शरीर तथा प्राण पद का अर्थ है जीवनवान् जीवात्मा। प्राण शरीर का नेता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर तथा जीवात्मा का नेता है एक शरीर से शरीरान्तर के प्रति प्रापक हैं क्योंकि परमात्मा की प्रेरणा से शरीरान्तर में गमन होता है। अन्न में अर्थात् अन्नमय अन्न का परिणामरूप इस शरीर में प्रतिष्ठित हैं। साकेत लक्षण दिव्यधाम में प्रतिष्ठित भी परमपुरुष भगवान् श्रीरामजी स्वकीय संकल्पमात्र से प्रति जीव शरीर में प्रतिष्ठित हो करके सर्वदा विद्यमान रहते हैं रूप विशेष से युक्त हो करके। उस गुहा के अन्दर में विद्यमान परमात्मा में हृदय मन अन्तःकरण को निवेशित करके अर्थात् परमेश्वर के ध्यान में तत्पर हो करके धीर विवेकी पुरुष साक्षात्कारी ज्ञान से अक्षररूप परमपुरुष श्रीरामजी को पूर्णरूप से देखते हैं। वे अक्षर ब्रह्मरूप भगवान् श्रीरामजी आनन्द रूप हैं निरवधिक निरतिशय सुख स्वरूप हैं। तथा अमृत अविनाशी हैं अथवा संसार लेप से रहित हैं वे प्रकाशित होते हैं, हृदयरूप गुहा में अवस्थित अक्षर ब्रह्म को धीर विद्वान् पुरुष ध्यान लक्षण उपासना द्वारा अमृतानन्दमय रूपसे प्रकाशमान ब्रह्म को उपासक पुरुष पूर्ण रूपसे साक्षात्कार करता है ॥७॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।८।

उस पर तथा अवर सभी के शरीरभूत परब्रह्म श्रीरामजी के दर्शन होने पर इस उपासक के हृदय की गांठरूप रागद्वेष आदि टूट जाते हैं एवं सभी संशय दूर हो जाते हैं तथा प्रारब्ध से भिन्न सभी कर्म नाश हो जाते हैं ॥८॥

परमात्मसाक्षात्कारस्य फलमभिधत्तेऽनेन मन्त्रेण-भिद्यते इति । भिद्यते भेदं विनाशं गच्छति । हृदय ग्रन्थिर्हृदयस्यान्तःकरणस्य ग्रन्थिर्गन्थिवद् दुःखेनापनेय तया ग्रन्थिर्वासना । सा चानादिकालतोऽनुवर्तमाना दृढ मूला दुर्मोचतया ग्रन्थिभावमापन्ना परमात्मसाक्षात्कारे ण विनश्यतीत्यर्थः । सर्वसंशयाः सर्वे च ते संशयाः । संशयपदमन्यथाज्ञानविपरीतज्ञानानामप्युपलक्षणम् । परमात्मनि सकलचिदचिच्छरीरके सकलोपादानकारणे विज्ञाने विज्ञातुरुपासकस्यापि सर्वविषयकविज्ञानस्य सामान्यतो विशेषतश्श्च जातत्वात् संशयान्यथाज्ञान विपरीतज्ञानानि छिद्यन्ते विनश्यन्तीत्यर्थः । अस्य वि ज्ञातुरुपासकस्य कर्माणि सर्वानर्थमूलभूतानि अनादि जन्मपरम्परया सञ्चितानि यानि तान्यपि क्षीयन्ते दग्ध बीजवत् स्वफलप्रदानाऽसमर्थानि भवन्ति । क्रियमा णानि तु तान्यश्लिष्टानि भवन्ति प्रारब्धानि केवलं

तिष्ठन्ति । यावद् भोगसमाप्तिर्न भवति तावत्कालं प्रारब्धानि तिष्ठन्तीतिभावः । एतत्सर्वं यदा भवति तं कालमुपदिशति तस्मिन् दृष्ट इति । परावरे परे इतरे अवरे न्यूना यस्मात्तत् परावरं सर्वतः समुत्कृष्टं तस्मिन् अक्षराख्ये परब्रह्मणि दृष्टे साक्षात्कारविषये सति । यदा स्वेतरसमस्तवस्तुसमुत्कृष्टोऽक्षराख्यः परमपुरुषः साक्षात्कृतो भवति पूर्वोक्तरीत्या वासनासंशयप्राक्तनप्रारब्धातिरिक्तकर्मणामात्यन्तिकक्षयो भवतीतिभावः ।८।

परमात्मा का साक्षात्कार होने से क्या फल होता है उसे इस मन्त्र से बतलाते हैं-**'भिद्यते हृदय'** इत्यादि । परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर इस उपासक का हृदय ग्रन्थी विनष्ट हो जाती है, हृदय अन्तःकरण की ग्रन्थी, ग्रन्थी गांठ के समान दुःखपूर्वक निराकरणीय होने से ग्रन्थी कहते हैं अर्थात् वासना । वह वासना अनादिकाल से अनुवर्तमान है अत एव दृढमूल है दुःख से परित्यक्त होने के कारण ग्रन्थीभाव को प्राप्त की हुई एतादृश वासना परमेश्वर के साक्षात्कार से विनष्ट हो जाती है । तथा सब संशय विनष्ट हो जाते हैं-संशय पद अन्यथा ज्ञान विपरीत ज्ञानों का उपलक्षक है । सकल चिदचित् शरीरक सकलोपादान कारण परमात्मा श्रीराम विषयक विज्ञान होने पर विज्ञाता जो उपासक है उसे भी

सर्वविषयक विज्ञान सामान्य विशेष रूपसे हो जाने से संशय ज्ञान अन्यथा ज्ञान तथा विपरीत ज्ञान सब विनष्ट हो जाते हैं। इस विज्ञाता उपासक का अनादिभव परम्परा से सञ्चित सर्व अनर्थ का कारणरूप जो शुभाशुभ कर्म वह भी क्षीयमाण हो जाता है दग्ध बीज के समान स्वकीय अंकुर प्रदान में असमर्थ हो जाता है। क्रियमाण जो कर्म है उसका संश्लेष नहीं होता है और प्रारब्ध कर्म केवल रहता है जब तक भोग की समाप्ति नहीं होती है तावत्काल पर्यन्त प्रारब्ध कर्म रहता है। यह सब जिस काल में होता है उस काल का निर्देश करते हैं-**'तस्मिन् दृष्टे परावरे'** परावर सर्वतः समुत्कृष्ट अक्षराख्य परमब्रह्म श्रीरामजी जब दृष्ट होते हैं अर्थात् अक्षर ब्रह्म का जब साक्षात्कार हो जाता है। जब स्वेतर समस्त वस्तु की अपेक्षया समुत्कृष्ट अक्षराख्य परमपुरुष साक्षात्कृत होते हैं तब पूर्वोक्त क्रम से वासना संशय और पूर्व कालिक प्रारब्ध से अतिरिक्त सर्व कर्मों का आत्यन्तिक क्षय विनाश हो जाता है ॥८॥

हिरणमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ९

सुन्दर सुवर्णमय सवसे उत्तम कोश-परपद श्रीसाकेत में सत्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण से रहित षोडश कलाओं से यानी अवयवो से

अर्थात् साकेत नामक परमधाम में विरज गुणत्रय संपर्क रहित में यहाँ विरज शब्द छान्दसत्वात् अदन्त है। निष्कल अवयव रहित विकार शून्य में ब्रह्मरूप से तथा गुण से सर्वातिशायी बृहत्वशाली परमात्म तत्व विद्यमान है। वह ब्रह्म शुभ्र है अर्थात् सकल दोष रहित होने से स्वच्छ है। और प्रकाशक सूर्य चन्द्रादिक तथा इन्द्रियादियों का भी ज्योतिप्रकाशक है। एतादृश जो पदार्थ है उसे आत्म तत्त्ववेत्ता लोग जानते हैं परन्तु प्राकृत रजो मल सम्बन्धवान् पुरुष उस आत्म तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥९॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥

उस स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्म में सूर्य प्रकाश नहीं करता है एवं चन्द्रमा तथा तारागण भी प्रकाश नहीं करते हैं और ये विजलियाँ भी प्रकाश नहीं करती हैं तो यह अग्नि कहां से प्रकाशित कर सकता है प्रकाशस्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रकाशित होने के वाद ही सब जगत प्रकाशित होता है उसी परब्रह्म श्रीरामजी के प्रकाश के द्वारा यह परिदृश्यमान सब संसार प्रकाशित होता है ॥१०॥

पूर्वमन्त्रे ज्योतिषां ज्योतिरित्युक्तं तदेव प्रपञ्च्य सुज्ञानाय प्रदर्शयति। तत्र तस्मिन् परब्रह्मणि भासमाने

सूर्यो भासकत्वेन प्रसिद्ध आदित्यो न भाति न प्रकाशते । तदीयप्रकाशेनाभिभूतप्रकाशत्वान्न सूर्यो भातुं समर्थो भवति । दिवा सौरेण साऽभिभूतभासस्तारा यथा न भान्ति तद्वदित्यर्थः । न चन्द्रतारकं चन्द्रश्च ताराश्चेति चन्द्रतारकम्-ताराधिपतिश्चन्द्रस्ताराश्च तस्मिन् भासमाने न भातुं शक्नुवते । इमा दीप्तिशालितया प्रसिद्धा विद्युतः तडितोपि न भान्ति । अयं प्रत्यक्ष गोचरोऽत्यल्पप्रकाशोऽग्निः । भौमं तेज इत्यर्थः । कुतो नैव केनापि प्रकारेण भातीत्यर्थः । सर्वेषु प्रकाशकेषु श्रेष्ठतया प्रसिद्धः सूर्योऽप्यभिभूततेजस्तया यदि भातुमसमर्थस्तदा चन्द्रादीनां का कथा ! ब्रह्मप्रकाशसविधे भासमानता का इति भावः । ननु परमात्मा निरतिशयप्रकाशः सदैव, व्यापकश्च सर्वत्र, तदा कुत्रापि कदापि सूर्यादयो न भासेरन् । दृश्यन्ते च भासमाना इति कथमित्यत्राह तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् । सर्वं सूर्यादिकं भासकजातं भान्तं भासमानं तं परमात्मानमेव अनुपश्चाद् भाति प्रकाशते । तत्र हेतुमाह-तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । तस्य परमात्मनो भासा दीप्त्या परमात्मदत्तया तत्सम्बन्धिन्यैव भासेति यावत् । सर्वमिदं यत्किञ्चिद् दृश्यमानं भासकं वस्तु सूर्यचन्द्रादिकं विभाति । यथोल्मुकादिकं वह्नि

संयोगाद् वह्निसम्बन्धिन्यैव भासा भासयति पदार्थान्तरं न स्वभासा । तस्य स्वकीयभासोऽभावात् तथैव सूर्यादिकमपि परमात्मदत्तभासैव जगद् भासयति । न हि स्वकीयाऽस्य भा अस्तीतिभावः । स्मृतिश्च तथाऽह-यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकमिति ॥१०॥

पूर्व मन्त्र में-**'ज्योतिषां ज्योतिः'** ऐसा कहा है उसी को विस्तृत रूपसे बतलाते हैं-जिससे उस आत्मतत्त्व का सरलतापूर्वक ज्ञान होवे-**'न तत्र सूर्यः'** इत्यादि । प्रकाशवान् उस परब्रह्म में इतर पदार्थों का भासकत्वेन प्रसिद्ध सूर्य भी प्रकाशित नहीं होते हैं । अर्थात् परमात्म प्रकाश से अभिभूत प्रकाशवान् होने के कारण से सूर्य भी प्रकाश करने में समर्थ नहीं होते हैं, जिस तरह दिन में सूर्य प्रकाश से अभिभूत तारा मण्डल प्रकाशित नहीं होता है उसी तरह प्रकृत में भी । तथा चन्द्रमा और तारागण भी उस परमात्म तत्व के प्रकाशक नहीं होते हैं । ये अत्यन्त प्रदीप्त विद्युत्गण भी उसे प्रकाशित करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं । और यह प्रत्यक्ष गोचर अल्प प्रकाशक भौम तेजोरूप अग्नि तो किसी भी प्रकार से प्रकाशक नहीं हो सकती है । सभी

प्रकाशकों में श्रेष्ठ सूर्य भी जब उस परमात्म तत्त्व के प्रकाशक नहीं होते हैं तब चन्द्रादिक की तो बात ही क्या करना ।

प्रश्न-परमात्मा तो निरतिशय प्रकाशशील सर्वदा प्रकाशित होते रहते हैं तथा सर्वव्यापक हैं तब तो सूर्यादिक का प्रकाशक भी नहीं होना चाहिये परन्तु ये सब भी दृश्य होते हैं ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं-**'तमेव भान्तम्'** इत्यादि । ये सब सूर्यादिक भासक समुदाय परमात्मा के प्रकाशित होने के वाद ही प्रकाशित होते हैं । उस परमात्मा के प्रकाश से यत् किञ्चित् दृश्यमान भासक वस्तु सूर्यादिक भासित होते हैं । जिस प्रकार से उल्कादिक पदार्थ वह्नि संयोग होने से वह्नि सम्बन्धी प्रकाश से ही प्रकाशक होते हैं उसीप्रकार से सूर्यादिक भी परमात्म प्रदत्त प्रकाश से प्रकाशक होते हैं स्वप्रकाश से नहीं, इन लोगों में स्वकीय कोई भी प्रकाशक नहीं है । स्मृति भी कहती है **'यदादित्यगतं तेजः'** से सूर्य का तेज समस्त संसार को प्रकाशित करता है और चन्द्रमा एवं अग्नि का तेज भी ईश्वर का ही तेज है इन सबका स्वतन्त्र नहीं ॥१०॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

卐 इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥२-२॥ 卐

यह अमृतरूप ब्रह्म श्रीरामतत्त्व ही पूर्व में है परब्रह्म ही पश्चिम में है एवं परब्रह्म ही उत्तर में है और दक्षिण में भी परब्रह्म ही है तो नीचे और ऊपर भी परब्रह्म श्रीरामजी ही फैला हुआ है । यह ब्रह्म वरिष्ठ-सभी से श्रेष्ठ है यह सब विश्व ही सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराममय है ॥११॥

सर्वस्य जगतो ब्रह्मात्मकत्वं प्रदर्शयन्नुपसंहरति । पुरस्तादग्रेदृश्यमानमदृश्यमानं वा यत् किञ्चिदस्ति तत् सर्वममृतमविनाशि ब्रह्मैव । अमृतस्वरूपब्रह्मात्मकमेवास्ति । पश्चात् पृष्ठभावे पश्चिमदिशि यद् वस्तु तदपि सर्वं ब्रह्मैव ब्रह्मात्मकमेव । दक्षिणतो दक्षिणस्यां दिशि, उत्तरेण च उत्तरस्यां दिशि च यत् किमपि विद्यते तदपि सर्वं ब्रह्मैव ब्रह्मात्मकमेव । अधोऽधो दिशि ऊर्ध्वमूर्ध्वदिशि च । उपर्यधः प्रदेशयोरिति यावत् । प्रसृतं व्याप्तं यद् यद् वर्तते तत्सर्वमपि ब्रह्म ब्रह्मात्मकमेव । तस्मादिदं विश्वं जगत् समस्तमपि ब्रह्म ब्रह्मात्मकमेव सर्वात्मभूतमिदं ब्रह्म वरिष्ठं वरणीयतमम्, परमानन्दरूपत्वात् परमप्राप्यत्वाच्च सर्वेषां

रहित परब्रह्म श्रीरामतत्त्व है वह शुद्ध स्वरूप है तथा वह ज्योतियों-इन्द्रियों का भी प्रकाशक ज्योति है आत्मा के ज्ञाता साधक उस परपुरुष श्रीरामजी को जानते हैं ।।९।।

उक्तमेवार्थमतः परं त्रिभिर्मन्त्रैः संक्षेपतो बोधयति बोधस्थिरतासम्पादनाय-हिरणमये इति । हिरणमये ज्योतिर्मये । स्वप्रकाश इत्येतत् । परे सर्वतः समुत्कृष्टे कोशे कोशवदवस्थितेऽप्राकृते देशविशेषे । साकेत इति यावत् । विरजं गुणत्रयसम्पर्कशून्यम् । छान्दसमदन्तत्वम् । निष्कलमवयवरहितम् । विकारशून्यमित्येतत् । ब्रह्म स्वरूपतो गुणतश्च सर्वातिशायिबृहत्त्वशालिपरमात्मतत्वं वर्तत इति शेषः । तद् ब्रह्म शुभ्रं सकलदोषापेतत्वात् स्वच्छम् । ज्योतिषां प्रकाशकानां सूर्यादीनामिन्द्रियाणाञ्च ज्योतिः प्रकाशकम् । ईदृशं यद् वस्तु तदात्मविदो ब्रह्मसाक्षात्कारवन्तोविवेकिन एव विदुर्जानन्ति । न प्राकृता जना रजोमलसम्बन्धवन्तो वेत्तुमर्हन्तीतिभावः ।।९।।

पूर्व मन्त्र प्रतिपादित पदार्थ को मन्त्रत्रय से समझाते हैं ज्ञान की स्थिरता का सम्पादन करने के लिये-**'हिरणमये परे कोशे'** इत्यादि । हिरणमय ज्योतिर्मय अर्थात् स्वप्रकाशरूप पर अर्थात् सर्वापेक्षया अत्यन्त उत्कृष्ट कोश के समान अवस्थित अप्राकृत देश विशेष में